वार्षिक रु. २५०, मूल्य रु. ३०

ISSN 2582-0656

विवेक ज्योति



रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

वर्ष ६४ अंक ११ नवम्बर २०२६

* आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च *

वर्ष ६४
अंक ११

विवेक-ज्योति

हिन्दी मासिक

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी योगस्थानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द



सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

कार्तिक, सम्वत् २०८३

नवम्बर, २०२६

अनुक्रमणिका

* भगवान और उनकी भुवनमोहिनी शक्ति माया : रामकृष्ण परमहंस देव ४८६
* भारतीय अध्यात्म (डॉ. महाराज एस. तोमर) ४८९
* वर्तमान परिवेश में मूल्यों का संवर्धन (दीपा राजेश दत्तात्रेय झनकर) ४९१
* जीवन कौशल के विकास में शिक्षक एवं शिक्षण संस्थाओं की भूमिका (डॉ. प्रज्ञा अग्रवाल) ४९८
* व्रज में श्रीमाँ सारदा (स्वामी ओजोमयानन्द) ५०१
* मनोनिग्रह सबसे बड़ा पुरुषार्थ (डॉ. विजय प्रकाश त्रिपाठी) ५०३
* (बच्चों का आंगन) एक शिक्षक को मिली शिक्षा (श्रीमती गीतांजलि मुरारी) ५०४
* भूदान-यज्ञ : एक अनूठा आरोहण (कंचन दीदी) ५०६
* (युवा प्रांगण) जब प्रतिज्ञा और कर्तव्य टकराएँ (स्वामी गुणदानन्द) ५१०
* अच्छे संस्कार और अच्छी संस्कृति (अशोक पाण्डेय) ५१२
* छत्तीसगढ़ की धरोहर : डॉ. तीजन बाई (श्रीमती मिताली सिंह) ५१३
* छात्र और अध्यापक : एक रथ के दो पहिए (बलराज मधोक) ५१५
* प्यार बच्चों पे लुटाएँ तो कोई बात बने (सुश्री कृष्णा कुमारी) ५१७
* (भजन एवं कविता) महारास का मास (श्रीधर द्विवेदी) ४९३, * काली महा करवाल लिये कर (डॉ. अनिल कुमार), * ठाकुर अब तो कृपा कीजै (डॉ. सत्येन्दु शर्मा) दीप-ज्योति! जग आलोकित कर (आनन्द तिवारी) ५१४, * हे जगद्धात्री महाकाली माँ (डॉ. ओमप्रकाश वर्मा) ५१५
* त्रिमूर्ति वन्दना (रामकुमार गौड़) ५१९

शृंखलाएँ

मंगलाचरण (स्तोत्र) ४८५
पुरखों की थाती ४८५
सम्पादकीय ४८७
रामगीता ४९४
श्रीरामकृष्ण-गीता ५१६
गीतातत्त्व-चिन्तन ५२०
साधुओं के पावन प्रसंग ५२३
समाचार और सूचनाएँ ५२६

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)

विवेक-ज्योति दूरभाष : ***०९८२७१ ९७५३५*** (फोन करने का समय केवल सुबह १० से १२)
ई-मेल : **vivekjyotirkmraipur@gmail.com,** वेबसाइट : ***www.rkmraipur.org***
आश्रम कार्यालय : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९ (समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक) रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

ISSN 2582-0656

विवेक-ज्योति के सदस्य कैसे बनें

भारत में	वार्षिक	५ वर्षों के लिए
एक प्रति ३०/-	२५०/-	१२५०/-
विदेशो में (हवाई डाक से)	७० यू.एस. डॉलर	३५० यू.एस. डॉलर
संस्थाओं के लिए	४००/-	२०००/-

भारत में रजिस्टर्ड पार्सल का शुल्क प्रति अंक अतिरिक्त ४५/- देय होगा ।

* सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक या साधारण मनीआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – **'रामकृष्ण मिशन'** (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाकर रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम रायपुर (छ.ग.) ४९२००१ के नाम स्पीड पोस्ट से भेज दें अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएं :

बैंक का नाम : सेन्ट्रल बैंक ऑफ इंडिया
अकाउण्ट का नाम : रामकृष्ण मिशन, रायपुर
शाखा का नाम : विवेकानन्द आश्रम,रायपुर,छ.ग.
अकाउण्ट नम्बर : 1385116124
IFSC : CBIN0280804

लेखकों से निवेदन

सम्माननीय लेखकगण ! गौरवमयी भारतीय संस्कृति के संरक्षण और मानवता के सर्वांगीण विकास में राष्ट्र के सुचिन्तकों, मनीषियों और सुलेखकों का सदा अवर्णनीय योगदान रहा है। विश्वबन्धुत्व की संस्कृति की द्योतक भारतीय सभ्यता ऋषि-मुनियों के जीवन और लेखकों की महान लेखनी से संजीवित रही है। आपसे नम्र निवेदन है कि 'विवेक ज्योति' में अपने अमूल्य लेखों को भेजकर मानव-समाज को सभी प्रकार से समुन्नत बनाने में सहयोग करें। विवेक ज्योति हेतु रचना भेजते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखें –

१. धर्म, दर्शन, शिक्षा, संस्कृति तथा मानव के नैतिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास से सम्बन्धित रचनाओं को 'विवेक-ज्योति' में स्थान दिया जाता है।, **२.** रचना बहुत लम्बी न हो। पत्रिका के दो या अधिकतम चार पृष्ठों में आ जाय। पाण्डुलिपि फुलस्केप रूल्ड कागज पर दोनों ओर यथेष्ट हाशिया छोड़कर स्पष्ट सुन्दर हस्तलेख में लिखी या टाइप की हुई हो। आप अपनी रचना ई-मेल – vivekjyotirkmraipur@gmail.com से भी भेज सकते हैं।, **३.** लेख में आए उद्धरणों के सन्दर्भ का पूरा विवरण दें।, **४.** आपकी रचना डाक में खो भी सकती है, अत: उसकी एक प्रतिलिपि अपने पास अवश्य रखें। अस्वीकृति की अवस्था में वापसी के लिये अपना पता लिखा हुआ एक लिफाफा भी भेजें।, **५.** पत्रिका हेतु कविताएँ छोटी, सारगर्भित और भावपूर्ण लिखें।, **६.** 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचारों का पूरा उत्तरदायित्व लेखक का होगा और स्वीकृत रचना में सम्पादक को यथोचित संशोधन करने का पूरा अधिकार होगा। न्यायालय-क्षेत्र रायपुर (छ.ग.) होगा।, **७.** 'विवेक-ज्योति' में मौलिक और अप्रकाशित रचनाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है, इसलिये अनुवाद न भेजें। यदि कोई विशिष्ट रचना इसके पहले किसी दूसरी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी हो, तो उसका उल्लेख अवश्य करें।

नवम्बर माह के जयन्ती और त्यौहार

०८ काली-पूजा/लक्ष्मी-पूजा/दीपावली
२१ स्वामी सुबोधानन्द
२३ स्वामी विज्ञानानन्द
५,२१ एकादशी

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर माँ काली के चित्र को दर्शाया गया है। इस चित्र को रामकृष्ण संघ के एक ब्रह्मचारी ने बनाया है।

'vivek jyoti hindi monthly magazine' के नाम से अब विवेक-ज्योति पत्रिका यू-ट्यूब चैनल पर सुनें

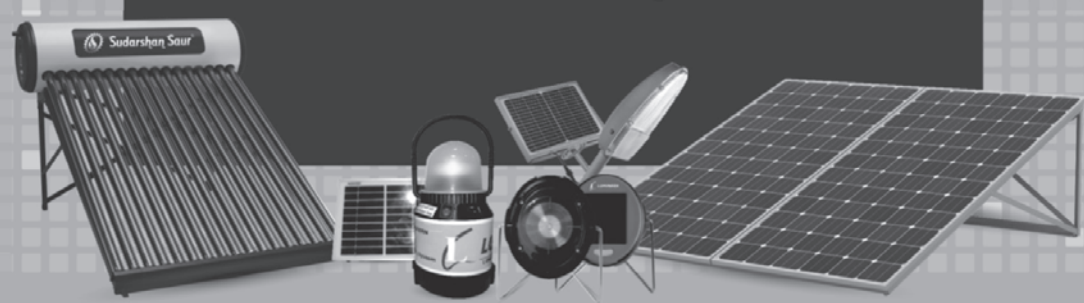
विवेक-ज्योति के अंक ऑनलाइन नि:शुल्क पढ़ें : www.rkmraipur.org

सुदर्शन सोलार...
ऊर्जा अपरंपार !

आधुनिक भारत की बिजली की बढ़ती हुई आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए हमारे पास पर्याप्त मात्रा में सौर ऊर्जा उपलब्ध है। प्राकृतिक रुप से उपलब्ध इस स्त्रोत का प्रतिदिन की अपनी आवश्यकताओं के लिये उपयोग करके, अपने बिजली के बिल में भारी पैमाने पर कटौती कर, हम अपने देश को बिजली के निर्माण में आत्मनिर्भर बनाने में सहायता कर सकते हैं।

इस सुन्दर भूमि को सदा हरी-भरी रखने के लिये अपना साथी

भारत का विश्वसनीय सौर ऊर्जा ब्रांड - 'सुदर्शन सौर'!



सोलर वॉटर हीटर
24 घंटे गरम पानी के लिए

सोलर लाइटिंग्स
ग्रामीण क्षेत्र में घरेलू उपयोग के लिए

सोलार इलेक्ट्रिसिटी सिस्टम
रुफटॉप सोलार
बिजली उत्पन्न करने के लिए

घर, बंगलोज, हॉस्पिटल्स, हॉटेल्स, इंडस्ट्रीज, कमर्शिअल कॉम्प्लेक्स, इन्स्टिट्यूट्स के लिए उपयुक्त

समझदारी की सोच!

३० साल का प्रदीर्घ अनुभव!

आजीवन सेवा — लाखां संतुष्ट ग्राहक — विस्तृत डीलर नेटवर्क

Sudarshan Saur®

www.sudarshansaur.com | Toll Free 1800 233 4545 | E-mail: office@sudarshansaur.com

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च ।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ६४ नवम्बर २०२६ अंक ११



काली-स्तोत्रम्

कालसंग्रसनात्काली सर्वेषामादिरूपिणी।
कालत्वादादिभूतत्वादाद्या कालीति गीयते।
पुनः स्वरूपमासाद्य तमोरूपं निराकृतिः।
वाचातीता मनोऽगम्या त्वमेकैवावशिष्यसे।।
साकारापि निराकारा मायया बहुरूपिणी।
त्वं सर्वादिरनादिस्त्वं कर्तृ हर्तृ च पालिका।।

– काल को ग्रास करने के कारण तुम काली हो एवं सबकी आदिरूपिणी हो अर्थात् कारणस्वरूपा हो। सबकी कालस्वरूपा और आदिभूता – कारणस्वरूपा होने के कारण तुम्हें आद्याकाली कहा जाता है।

पुनः प्रलयकाल के पश्चात् तुम्हीं तमोमय, निराकार, वाणी से अतीत एवं मन से अगम्य स्वरूप का अवलम्बन कर अवशिष्ट रहती हो।

तुम साकार-निराकार और माया से बहुरूपिणी हो। तुम सबका कारण तथा अनादि हो। तुम्हीं सृष्टि-पालन और संहारकारिणी हो।

पुरखों की थाती

मर्कटस्य सुरापानं तस्य वृश्चिकदंशनम्।
तन्मध्ये भूतसंचारो यद्वा तद्वा भविष्यति।।९१६।।

– बन्दर ने शराब पी ली हो, ऊपर से उसे बिच्छू डंक मार दिया हो और उसके ऊपर भूत सवार हो गया हो, तो उसकी जो अवस्था होती है, वैसी ही अवस्था असंयमित मन वाले व्यक्ति की भी होती है।

महद्भिः स्पर्धमानस्य विपदेव गरीयसी।
दन्तभङ्गो हि नागानां श्लाघ्यो गिरिविदारणे।।९१७।।

– महान लोगों के साथ स्पर्धा करने वाले को बहुत बड़ी विपत्ति का सामना करना पड़ता है, क्योंकि पहाड़ को तोड़ने के चक्कर में हाथियों के दाँत टूट जाते हैं। (पञ्च. १.४०४)

महानुभाव-संसर्गः कस्य नोन्नतिकारकः।
पथाम्बु जाह्नवी-संगात् त्रिदशैरपि वन्द्यते।।९१८।।

– महान लोगों का सान्निध्य भला किसके लिए उन्नतिकारी नहीं होता, मार्ग का पानी गंगाजी का संग पाकर देवताओं द्वारा भी पूजित होता है।

भगवान और उनकी भुवनमोहिनी शक्ति माया : रामकृष्ण परमहंस देव

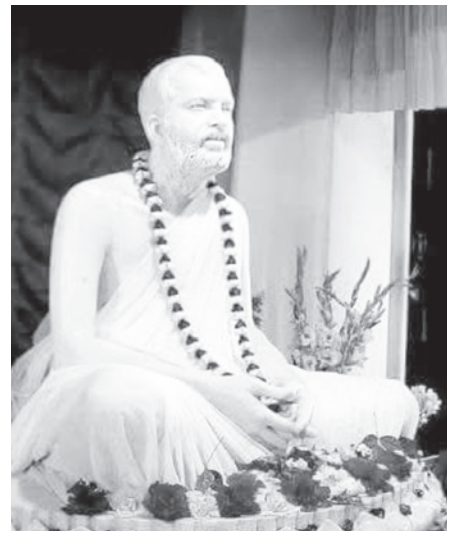
माया को देखने की इच्छा से प्रार्थना करते हुए एक दिन मुझे इस प्रकार का दर्शन हुआ – एक छोटा-सा बिन्दु धीरे-धीरे बढ़ते हुए एक बालिका के रूप में परिणत हुआ। बालिका क्रमशः बड़ी हुई और वह गर्भवती हुई, फिर उसने एक बच्चे को जन्म दिया और साथ ही साथ उसे निगल गई। इस प्रकार उसके गर्भ से अनेक बच्चे जन्मते और वह उन सब को निगलती गई। तब मेरी समझ में आया कि यही माया है।

साँप के दाँतों में विष है, लेकिन उस पर विष का असर नहीं होता। किन्तु जब वह दूसरे को काटता है, तो उस व्यक्ति पर विष चढ़ जाता है। इसी प्रकार, भगवान में माया है तो अवश्य, पर वह उन्हें मुग्ध नहीं कर सकती, किन्तु सारे संसार को मुग्ध कर लेती है।

एक बार दक्षिणेश्वर मन्दिर के नौबतखाने में एक साधु आकर कुछ दिन रहे थे। वे किसी से बातचीत न कर सदा ध्यान-धारणा में ही डूबे रहते। एक दिन अचानक बादल उठे और चारों ओर अँधेरा छा गया; फिर थोड़ी ही देर में जोरदार आँधी-सी चली और बादलों को उड़ा ले गई। यह देख वे साधु कमरे से बाहर निकलकर बरामदे में खूब हँसने और नाचने लगे। उनकी यह अवस्था देख मैंने उनसे पूछा, ''तुम तो हमेशा कमरे के अन्दर चुपचाप बैठे रहते हो, आज इतना नाच-नाचकर आनन्द कैसे मना रहे हो?'' साधु ने कहा, ''संसार की माया ऐसी ही है – पहले तो उसका कोई नामों-निशान तक नहीं था, पर एकाएक ब्रह्मरूपी शान्त आकाश में प्रकट हो उसने इस जगत्-प्रपंच का सर्जन कर डाला, फिर ब्रह्म के निःश्वास मात्र से वह न जाने कहाँ ओझल भी हो गई।''

एक साधु हाथ में काँच की नली का एक टुकड़ा लिए दिन-रात उसकी ओर ताकते और हँसते जाते थे। जिस प्रकार उस काँच के भीतर से लाल, नीले, पीले आदि कई रंग दिखाई देते हैं, पर वे सभी मिथ्या है, उसी प्रकार यह संसार सत्य प्रतीत होता है, पर है मिथ्या ही, यही सोचकर वे हँसा करते थे।

हरि जब सिंह का मुखौटा लगा लेता है, तो सचमुच बड़ा डरावना दिखने लगता है। वह अपनी खेलती हुई छोटी बहन के पास जाकर सिंह की सी आवाज करते हुए उसे डराने लगता है, तो वह बच्ची चौंककर मारे डर के चीखती हुई भागने लगती है। लेकिन जब हरि वह मुखौटा हटा लेता है, तो तुरन्त वह घबड़ाई हुई बच्ची अपने प्यारे भाई को पहचानकर उसकी ओर चिल्लाती हुई दौड़ पड़ती है – ''अरे,



यह तो भैय्या है।'' मनुष्यों का भी यही हाल है। माया के आवरण में ब्रह्म ही छिपा हुआ है, फिर भी माया की शक्ति से लोग मुग्ध और भयभीत होकर कितनी ही चीजें करने को विवश हो जाते हैं, तब वह भयंकर, कठोर शासक के रूप में प्रतीत नहीं होता।

ईश्वर यदि सर्वत्र विराजमान हैं, तो हम उन्हें देख क्यों नहीं पाते? काई से ढके तालाब के किनारे खड़े होकर देखने पर तुम्हें उसमें पानी नहीं दिखाई देगा। अगर तुम पानी देखना चाहते हो, तो तालाब पर से काई हटा दो। माया के परदे से ढकी हुई आँखों से देखकर तुम लोग कहते हो कि हमें ईश्वर क्यों नहीं दिखाई देते। अगर तुम ईश्वर को देखना ही चाहते हो, तो आँखों पर से माया का परदा हटा डालो।

माया और ब्रह्म मानो चलता हुआ साँप और स्थिर पड़ा हुआ साँप है। अर्थात् शक्ति क्रियाशील अवस्था में माया है और निष्क्रिय अवस्था में ब्रह्म।

जैसे समुद्र का जल कभी स्थिर होता है, तो कभी तरंगपूर्ण, वैसे ही ब्रह्म और माया है। शान्त समुद्र मानो ब्रह्म है और तरंगायित अवस्था में माया।

ब्रह्म और उसकी शक्ति मानो अग्नि और उसकी दाहिका शक्ति के समान हैं।

सृष्टि के लिए शिव तथा शक्ति; दोनों की आवश्यकता है। कुम्हार सूखी मिट्टी से घड़ा नहीं बना सकता, पानी भी चाहिए। इसी प्रकार शक्ति की सहायता के बिना केवल शिव के द्वारा सृष्टि नहीं हो सकती।

सम्पादकीय

बच्चों में शिक्षा और सुसंस्कार

बच्चे प्रत्येक माता-पिता के प्राण होते हैं। उनकी आँखों के तारे होते हैं। उनकी गरिमा और स्वाभिमान होते हैं। उनके कुल के गौरव और उनके आत्मसम्मान होते हैं।

बच्चे राष्ट्र की सम्पत्ति होते हैं। बच्चे राष्ट्र के गौरव होते हैं। बच्चे राष्ट्र की विरासत होते हैं। बच्चे राष्ट्रसेवक, देशभक्त और राष्ट्रनायक होते हैं।

बच्चे युगनायक, विश्व पथ-प्रदर्शक और विश्व की शान होते हैं। वास्तव में बच्चे बड़े महान होते हैं।

बच्चों में उत्कर्ष की समस्त सम्भावनाएँ विद्यमान होती हैं। उनमें महानता सकल सद्गुण रूपी पुष्प की कली के सदृश प्रस्फुटित होने को विकल होती है। उनमें निहित सभी गुण नव किसलय सदृश अभिव्यक्त होने को व्यग्र होते हैं। उनमें अभिनव संसार को अपने ढंग से देखने की उत्कट लालसा होती है, उच्छ्वास होता है, उल्लास होता है। आवश्यकता होती है, उन्हें अभिव्यक्त होने का सुअवसर और सुयोग प्रदान करने की। उन्हें वैसे परिवेश और परिस्थिति तथा प्रेम प्रदान करने की।

यहीं पर सर्वप्रथम माता-पिता, अभिभावक की भूमिका आती है। यह भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह भूमिका इतनी कठिन है, जिसमें अधिकांश लोग असफल हो जाते हैं और इसका दुष्परिणाम उस बच्चे को, अभिभावक को, देश को और सारे विश्व को भुगतना पड़ता है। ठीक इसके विपरीत, यदि अभिभावक इस महत्त्वपूर्ण भूमिका को निभाने में सफल हो जाते हैं, तो इसका सुपरिणाम उस बच्चे को, राष्ट्र को और सम्पूर्ण जगत् को गौरवान्वित करता है।

इसलिए अभिभावक को अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका को जानकर उसे यथासमय बच्चों के स्तर पर उतरकर उन्हें सँभालने और उन्हें प्रसन्नता से खिलखिलाते हुए विकसित होने देने का प्रयास करना चाहिए। आइए ! इस सम्बन्ध में कुछ अभिभावकों से प्रेरणा लेते हैं कि कैसे उन्होंने अपने बच्चों को शिक्षा और संस्कार दिए और उन्हें विश्ववन्द्य बनाने में अपनी महती भूमिका का निर्वहन किया।

गोस्वामी तुलसीदास जी श्रीरामचरितमानस में भगवान श्रीराम की बाल-लीलाओं का वर्णन करते हैं। उसमें आगे वे लिखते हैं कि माता कौसल्याजी ने राम के घुँघराले बालों को सुन्दर सँवार कर पीला वस्त्र पहनाया है, जिससे उनका साँवला शरीर भी करोड़ों कामदेव से अधिक सुन्दर है। यह माँ का दायित्व है कि बच्चों को स्वच्छ, सुन्दर रहने की आदत डालें।

चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे।।
पीत झगुलिया तनु पहिराई। काम कोटि छवि स्याम सरीरा।
रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा ।।[१]

राजा दशरथजी इतना प्रेम करते हैं कि जब राम खेलकर धूल भरे हुए शरीर में आते हैं, तो राजा उन्हें प्रेम से गोद में उठा लेते हैं, उन्हें डाँटते नहीं हैं।

धूसर धूरि भरें तनु आए। भूपति बिहसि गोद बैठाए।।[२]

यही श्रीरामजी जब थोड़ा बड़े होते हैं, तो अपने चारों भाइयों से, सारी प्रजा से प्रेम करते हैं और माता-पिता के आज्ञाकारी बालक बनते हैं। गोस्वामी लिखते हैं –

अनुज सखा संग भोजन करहीं।
मात पिता आज्ञा अनुसरहीं ।।
जेहि बिधि सुखी होहिं सब लोगा।
करहिं कृपानिधि सोइ संजोगा।।

इतना ही नहीं, वे प्रात: उठकर सर्वप्रथम माता-पिता और गुरुजी को प्रणाम करते हैं –

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा।
मात पिता गुरु नावहिं माथा।।
आयसु मागि करहिं पुर काजा।

श्रीराम में इतने अच्छे संस्कार हैं। इन बातों को बच्चों को बताना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द की माताजी श्रीमती भुवनेश्वरी देवी स्वामीजी को अपनी गोद में खेलाती हुईं स्वयं रामायण, महाभारत की कहानियाँ सुनाती थीं। जब नरेन्द्रनाथ स्कूल से कुछ अपशब्द सुनकर आये, तो भुवनेश्वरी देवी और विश्वनाथ दत्त, दोनों ने उन्हें ऐसा बोलने से मना किया और स्कूल नहीं भेजने तक की बात कह दी थी। नरेन्द्रनाथ में परोपकार और सहानुभूति और स्वाभिमान के संस्कार अपने माता-पिता से मिले थे।

बच्चों की भावनाओं को समझना अत्यन्त कठिन है। वे अकारण कभी हँसते हैं, कभी रोते हैं, कभी रूठते हैं। उनकी माँग को कभी कोई पूरा नहीं कर सकता। इस सम्बन्ध में

प्रयागराज कुम्भ में जाते समय ट्रेन में एक वैष्णव सन्त ने बहुत सुन्दर कहानी सुनाई थी, उसका उल्लेख करता हूँ –

एक राजा थे। उनकी कोई सन्तान नहीं थी। उन्हें कई वर्षों के बाद एक पुत्र हुआ। राजमहल और प्रजा में बहुत हर्ष हुआ। हर्षोल्लास से महीनों पुत्रोत्सव मनाया गया। राजकुमार बड़े होने लगे। २-३ वर्ष के होने पर वे बहुत हठी हो गये। वे जो कुछ माँगते, बिना लिए नहीं छोड़ते। जोर-जोर से रोने लगते थे। राजा ने कह रखा कि राजमहल में कोई कमी नहीं है, ये जो माँगें, इन्हें सब कुछ दिया जाए। मैं राजकुमार को रोते हुए नहीं देख सकता। सभी लोग उनकी माँगों की पूर्ति कर रहे थे। एक दिन राजकुमार हाथी के लिए रोने लगे। राजा ने कहा, हस्तीशाला में बहुत से हाथी हैं, एक ला दो, लेकिन इन्हें रोने मत दो। हाथी मँगाया गया, राजकुमार देखकर हँसने लगे। थोड़ी देर बाद राजकुमार पुनः रोने लगे। राजा ने पूछा, अब क्या चाहिए? राजकुमार ने बोतल माँगा। बोतल दे दिया गया। कुछ देर बाद पुनः रोने लगे। राजा ने कहा, अब क्या हुआ? राजकुमार ने कहा, अब इस हाथी को इसी बोतल में डाल दो। राजा ने एक कृत्रिम छोटा हाथी मँगाया और बोतल में डाल दिया। राजकुमार ने रोते हुए कहा, नहीं, इस बड़े हाथी को इस छोटे बोतल में डालो और हाथ-पैर पटककर रोने लगे। तब राजा को समझ में आया कि एक बालक की इच्छाओं की पूर्ति राजा भी नहीं कर सकता।

बालक कोई भी हो, चाहे वह धनी हो या विपन्न हो, वह हठी होता है और उसकी माँग विचित्र होती है, जो अपूरणीय है। लेकिन ऐसे हठी बालक की भावनाओं को बिना ठेस पहुँचाए, कैसे उनसे व्यवहार करें, यह बाल मनोविज्ञान भी अभिभावक को जानना आवश्यक है।

लगभग सभी माताएँ बिना किसी विश्वविद्यालय में पढ़े बाल-मनोविज्ञान की पारखी होती हैं। जहाँ पुरुष अपनी सारी उपाधियों सहित हार जाते हैं, वहाँ माताओं का व्यावहारिक बाल-मनोविज्ञान जीत जाता है।

एक बार मैं ट्रेन से जा रहा था। देखा एक ५-६ वर्ष का लड़का रो रहा है। उसकी माँ खाना खा रही थी। लड़का अपना जूता छूने के लिए माँग रहा था, जो बैग में था। पिताजी आधे घण्टे समझाते और डाँटते रहे कि जूता की कोई आवश्यकता नहीं है, वह बैग में है और लड़का रोता रहा, पिता चिढ़ते रहे। उसकी माँ बिना खीझे खाना खाती रही। खाने के बाद माता ने बैग खोला, जूता दिखाया, लड़के ने जूता छूआ और हँसने लगा। यह चमत्कार ही था। बच्चों की भावनाओं को समझना बहुत आवश्यक है। उस पर अपना हठ और अहंकार न थोपें।

घर और स्कूल, दोनों ही शिक्षा और संस्कार के प्रमुख केन्द्र होते हैं। इसलिए दोनों स्थानों का परिवेश सदा सदाचारमय और स्नेहमय होना चाहिए।

बच्चों से प्रेम से बोलें, उन्हें प्रेम से जगाएँ और प्रेम से सुलाएँ। मैं इसलिए कह रहा हूँ कि बहुत परिवारों में नशे में या अहंकार में मूढ़ पति-पत्नी दिन-रात झगड़ते रहते हैं और इनका परिणाम बच्चे भुगतते हैं। जहाँ भगवान के जगाने-सुलाने हेतु माताएँ प्रभाती, 'जागिये रघुनाथ कुँअर' और 'अँखियों में नींद भरि आई बिहारीजी के' गीत और लोरियाँ सुनाती हैं, वहीं जीवन्त बाल-भगवान को माता-पिता के प्रकोप और उपेक्षा का शिकार होना पड़ता है।

बच्चों के अक्षरज्ञान हेतु उनमें रुचि पैदा करें। उन्हें प्रेम से पढ़ने हेतु प्रेरित करें। उन्हें स्कूल में जाने के लिए प्रोत्साहित करें। पटना की ४ वर्ष की अभयालक्ष्मी को स्कूल से इतना प्रेम है कि वह अपनी मम्मी से पूछती है कि रविवार को स्कूल क्यों बन्द रहता है? वह रविवार को स्कूल जाना चाहती है। उसे स्कूल में जाकर पढ़ना, खेलना और नए-नए मित्रों से मिलना अच्छा लगता है।

नामकरण से लेकर सभी बालसंस्कार हेतु किए गए क्रिया-कलापों का प्रभाव बच्चे के मन-मस्तिष्क पर कहीं स्थूल और कहीं सूक्ष्म रूप से पड़ता है। बच्चों के सम्मुख सज्जनता से बात करें, भद्र आचरण करें, किसी दूसरे को अपशब्द न कहें, क्योंकि बच्चे देखकर सीखते हैं। हमें प्रायः अपने मन्दिर में यह देखने को मिलता है, जब माता-पिता भगवान को प्रणाम करते हैं, तो उन्हें देखकर वैसे ही बच्चे भी प्रणाम करते हैं।

बच्चों को ध्रुव, प्रह्लाद और नचिकेता जैसी प्रेरक कहानियाँ सुनाएँ। राष्ट्रप्रेम हेतु राष्ट्रभक्तों, समाजसेवकों की कहानियाँ सुनाएँ। वर्तमान बाल-जगत् में गीत, नृत्य, अध्ययन और वीरता आदि में प्रसिद्ध प्रतिभाशाली बच्चों के सम्बन्ध में बताएँ। अपनी क्षणिक सुविधा हेतु उन्हें मोबाइल देकर न भरमाएँ। उन्हें मोबाइल की आदत न लगाएँ।

बच्चों की शिक्षा कैसी हो, इस पर फिर कभी चर्चा करूँगा। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – **१.** श्रीरामचरितमानस १/१९८/१०-१२ **२.** वही १/२०२/९

भारतीय अध्यात्म

डॉ. महाराज एस. तोमर

मननशील होने के कारण मनुष्य ही सार्थक कर्म कर सकता है – चाहे ब्रह्मांड की खोज करे या अन्त:करण की खोज करे। मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार को अन्त:करण कहा जाता है। विकारी होने से मन मैला है, चंचल है और अज्ञान से आवृत है, अत: मन का प्रवाह सांसारिक भोगों की ओर चलता है। नि:स्वार्थ सेवा से मन का मैल मिटता है और उपासना से चंचलता मिटती है। चित्त का कार्य चिन्तन करना है। 'मैं नहीं जानता हूँ', ऐसा मन का व्यवहार भावरूप अनादि अज्ञान है, चित्त का भ्रम अज्ञान नहीं है। ज्ञानप्राप्ति से अज्ञान का आवरण मिटता है। सत्य एक है और वेदान्त सत्य की खोज है, धर्म नहीं है।

पाँच कोश (अन्नमय, मनोमय, प्राणमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोश) ही मन और इन्द्रियों के अनुभव में आते हैं। जिस अनुभव के द्वारा ये पाँच कोश जाने गए हैं, उस अनुभव का निवारण कौन करेगा? कोई नहीं। यह नियम है कि जो जिसको जानता है, वह उससे न्यारा होता है। पाँच कोशों का अनुभव रूप जो चैतन्य है, वह पाँच कोशों से न्यारा आत्मा है और सत्-चित्-आनन्द इसके स्वरूप हैं।

जिसकी निवृत्ति नहीं होती, वह सत् है, जो स्व प्रकाशरूप है, वह चित्त है और जो परम प्रेम का विषय है, वह आनन्द कहलाता है। जन्म-मरण रहित, स्व प्रकाशरूप और व्यापक होने से आत्मा सच्चिदाननन्दघन का स्वरूप है। यदि आत्मा का कोई कारण है, तो वह आत्मा से न्यारा अनात्मा ही होगा, जो प्रपंचरूप संसार है। जो न स्वयं को जाने और न दूसरे को जाने तथा सीमित हो, वह विनाशशील, जड़ और प्रपंच कहलाता है। आत्मा ज्ञानरूप और प्रपंच को जानने वाले मन व इन्द्रियों द्वारा नहीं जाना जाता। अत: आत्मा जड़ नहीं है, परन्तु मन, चित्त, शरीर आदि जड़ हैं। इस प्रकार आत्मा और चित्त सर्वदा भिन्न हैं, ऐसा निश्चित समझ जाना 'विवेकज्ञान' कहलाता है।



शब्द का अर्थ के साथ जो सम्बन्ध है, वह शब्द की वृत्ति कहलाती है, जिनमें दो हैं – अभिधावृत्ति और लक्षणावृत्ति। अभिधावृत्ति से जो शब्द का अर्थ जाना जाता है, वह शब्द का वाच्यार्थ है और लक्षणावृत्ति से जो शब्द का अर्थ जाना जाता है, वह शब्द का लक्ष्यार्थ है। सामवेद के महावाक्य 'तत्त्वमसि' के तत् और त्वं पदों का अर्थ जानने से शरीर और आत्मा के बन्धन जड़-चेतन-ग्रन्थि का निवारण होता है। वेदान्त का विश्लेषण करने पर तत् पद का वाच्यार्थ ईश्वर है और त्वं पद का वाच्यार्थ जीव है। तत् पद का लक्ष्यार्थ परमात्मा (चेतनब्रह्म) है और त्वं पद का लक्ष्यार्थ आत्मा है। अत: तत्त्वमसि के तत् और त्वं पदों के लक्ष्यार्थ में एकता है, अर्थात् आत्मा परमात्मा (ब्रह्म) का अभिन्न अंश है। यह एकता (अद्वैत) तत्त्वज्ञान कहा जाता है। आत्मा सब जीवों में व्याप्त है, इसलिए पूरा विश्व एक परिवार है –'वसुधैव कुटुम्बकम्', जो भारतीय वेदान्त का संदेश है। स्वामी विवेकानन्द ने इस वेदान्त को विश्व में फैलाया[१]। आत्मा और अनात्मा को भिन्न करके जानना वेदान्त का विचार है तथा ''मैं कौन हूँ, चेतन कौन है और प्रपंच क्या है'' विचार का विषय है[२]।

तत्त्वज्ञानी उत्तम कहा जाता है, परन्तु तत्त्वज्ञान पाने में विषयासक्ति, संशय और भ्रम बाधक बनते हैं। विषयासक्ति का नाश वैराग्य से होता है तथा तत्त्वज्ञानी के मुख से तत्त्वमसि के तत् और त्वं पदों का अर्थ सुनने से प्रमाणगत संशय मिटकर विवेकज्ञान उदय होता है। श्रवण के बाद मनन करने से प्रमेयगत संशय मिटता है। श्रवण और मनन के बाद निदिध्यासन (आत्म-चिन्तन) से विपरीत भावना मिटकर भ्रम का नाश होता है। विषयासक्ति के नाश बिना श्रवण नहीं बनता, इन

दोनों के बिना मनन नहीं बनता और इन तीनों के बिना निदिध्यासन नहीं हो सकता।

विषयासक्ति, संशय और भ्रम का नाश हो जाने के बाद जिज्ञासु का अनादि अज्ञान मिट जाता है। अज्ञान का नाश हो जाने पर उसे 'आत्मा और परमात्मा की एकता का दृढ़ ज्ञान निश्चित होता है'। आवरण और विक्षेप, ये दोनों अज्ञान की शक्तियाँ हैं। तत्त्वज्ञान से अज्ञान का आवरण मिटता है। अग्नि में भस्म हुए बीज की तरह ज्ञानाग्नि में भस्म हुई विक्षेप शक्ति लेशमात्र भासती है। तत्त्वज्ञानी सर्वात्मभाव से बर्तता है, परन्तु कर्मों में लिप्त नहीं होता। फिर भी तत्त्वज्ञानी को संसारी प्रपंच लेशमात्र भासता है और तत्त्वज्ञानी या ज्ञानयोगी की यह 'जीवन्मुक्त' अवस्था है। मृत्यु के बाद आत्मा नया शरीर धारण करने में असमर्थ रहती है, क्योंकि अज्ञान मिट जाने से उसके सब क्लेश व कर्म नष्ट हो जाते हैं।

यद्यपि चित्त और आत्मा सर्वथा भिन्न हैं, परन्तु चित्त पर चेतन आत्मा का प्रकाश पड़ने से चित्त में चेतनता-सी आ जाती है व इन दोनों में अज्ञानवश एकता-सी बनी रहती है, जो शरीर व आत्मा का बन्धन कहलाता है। विवेकज्ञान हो जाने पर भी शरीर-भाव (अहं) इस बन्धन को बनाए रखने को प्रेरित करता रहता है। परन्तु चेतन होने के कारण आत्मा को चित्त की वृत्तियों का ज्ञान रहता है। ध्यान अवस्था में जब चित्त ध्येय में केन्द्रित होने लगता है, तो चित्त की वृत्ति ठहरने लगती है, जिसे चित्तवृत्ति निरोध या समता, समत्व अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था में चित्त अत्यन्त स्वच्छ हो जाता है और निर्मल बुद्धि को आत्माभास होने लगता है। यही अपने 'स्वरूप की पहचान' है अर्थात् मनुष्य का सच्चा स्वरूप आत्मा है, शरीर नहीं।

इस अनुभव के बाद विवेकज्ञान में झुका हुआ चित्त अपने कारण प्रकृत्ति के सत्त्व गुण में विलीन होने लगता है जड़ का चेतन में विलय। फिर ध्यानी साधक का शरीर प्रपंच रहित हो जाता है, उसके शरीर से आत्मा का बन्धन टूटने लगता है और आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हुई 'विदेहमुक्ति' प्राप्त कर लेती है। अर्थात् विदेहमुक्त अवस्था में साधक को प्रपंचरूप संसार नहीं भासता और उसे निर्बीज समाधि प्राप्त हो जाती है, आत्मा का परमात्मा में मिलन और क्लेशों का नाश हो जाता है।

ज्ञान और ध्यान साधनों से सत्य की खोज में वैराग्य अनिवार्य है। साधारण मनुष्य वैराग्य लेने में असमर्थ होते हैं और कर्म या भक्ति को अपनाते हैं। मन, शरीर और वाणी की क्रिया को कर्म कहते हैं और प्रकृति जनित सत्त्व, रज और तम गुण कर्म करने को बाध्य करते हैं। कर्म का फल होता है – सुखद या दुखद, जो शरीर को भोगना पड़ता है। यह प्रकृति का नियम है। जिन कर्मों के फल मृत्यु से पहले नहीं मिलते, वे कर्म संस्काररूप से सूक्ष्म शरीर में एकत्रित रहते हैं।

सब जीवों में मरण-भय और जीने की इच्छा बनी रहती है, जो अनादि वासना है। वे पूर्व अनुभव स्मृति के द्वारा जाग जाते हैं। यदि मृत्यु का अनुभव कभी नहीं हुआ, तो मृत्यु का भय क्यों है? अत: इस जीवन से पहले भी जीवन था (पूर्वजन्म) और पुनर्जन्म का संकेत भी है। वेदान्त के अनुसार वर्तमान जीवन पूर्वजन्म के कर्म-संस्कारों का फल है और पुनर्जन्म वर्तमान जीवन के संस्कारों का फल है। इस प्रकार जन्म-मरण चक्र और शरीर व आत्मा का बन्धन चला आ रहा है, जो महादु:ख है।[३]

शुभकर्म (तप, दान, सेवा आदि) नि:स्वार्थ भाव से करना मरण-भय से बचा लेता है और श्रीमान परिवार में पुनर्जन्म का कारण बनता है। अहंकार से किए गए शुभ कर्म भी अकर्म होते हैं। अकर्म का फल न तो इस जीवन में और न मृत्यु के बाद ही लाभदायक है। सकाम-कर्म कर्म-संस्कार बनाकर शरीर-आत्मा का बन्धन देते हैं और निष्काम-कर्म बन्धन क्षीण करके मुक्ति में सहायक बनते हैं। कुकर्मों के संस्कार नीची योनियों में पुनर्जन्म का कारण बनते हैं। अत: कर्मों की महिमा अनोखी है। जीवन-निर्वाह के लिए कर्म तो आवश्यक है। गीता के अनुसार आसक्ति को त्यागकर समान बुद्धि से कर्तव्यकर्म करना ही समत्व योग है। अत: अन्तर्यामी परमात्मा में लगे हुए चित्त द्वारा आशारहित, ममता रहित और संताप रहित होकर कर्म करने का परामर्श है। भक्ति और उपासना में शरणागति और श्रद्धा आवश्यक हैं। भक्त अपने इष्टदेव के रूप और गुणों का जप, भजन व कीर्तन करते-करते इष्टदेव से भाव रूप एकता-सी बना लेते हैं और यह भक्ति की आनन्द अवस्था है, जो अशुभभावों को मिटाती है। यद्यपि ज्ञान और भक्ति दोनों ही मानसिक क्रियाएँ हैं – ज्ञान में जानना और भक्ति

शेष भाग पृष्ठ ४९७ पर

वर्तमान परिवेश में मूल्यों का संवर्धन

दीपा राजेश दत्तात्रेय झनकर

के.ए.ए.एन.एम.एस. कला विज्ञान वाणिज्य महाविद्यालय,

सटाणा, बागलाण, नाशिक

प्रिय युवा मित्रो ! मूल्य संवर्धन की शिक्षा हम आपको दे रहे हैं। व्यक्तिगत विकास में आवश्यक विभिन्न कौशल, मूल्य पाठ्यक्रम राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 के अन्तर्गत सम्मिलित किए जा रहे हैं। भारतीय कला, साहित्य, संस्कृति, मूल्य आदि का संवर्धन परम्परागत रूप में परिवार में होता था। पहले तो इसके लिए न विशेष पाठ्यक्रम था, न वर्ग, न अन्य कोई विशेष वर्ग, भारतीय परिवार में घर की संकल्पना, परिवार की आवश्यकता, रिश्ते-नातों का जमघट; सभी के सभी मूल्य संवर्धन के केन्द्र थे।

वर्तमान समय गति का, गतिशील तन्त्रविज्ञान का है। वैश्वीकरण ने संसार को आपस में मिला दिया है। बाजारीकरण, पाश्चात्यीकरण का प्रभाव सर्वत्र दिखाई दे रहा है। परिवारों का विघटन हो रहा है। टूटते-बिखरते परिवारों में बच्चों में मूल्यों का संवर्धन करने का कार्य स्कूल, महाविद्यालय, अनेक प्रकार की शाखाएँ, संस्थाएँ कर रही हैं। चाहे वह बाल संस्कार केन्द्र हो, राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शिक्षा हो अथवा रामकृष्ण मिशन के विभिन्न शिविर हों या अलग-अलग अन्तर्जाल (नेट) पर उपलब्ध मूल्य संवर्धन वर्ग हो।

मूल्य सम्वर्धन के लिए अब स्कूलों में, महाविद्यालयों में विशेष प्रावधान किए जा रहे हैं। पाठ्यक्रम में उनका समावेश किया जा रहा है। दो वर्ष पूर्व इसकी आवश्यकताओं को देखते हुए बेलूड़ मठ स्थित मुख्यालय ने मूल्य संवर्धन शिक्षा के लिए गुरुग्राम में एक स्वतन्त्र केन्द्र स्थापित किया है, जो वर्तमान में पूरे भारतवर्ष में ६००० स्कूलों में इस दिशा में कार्य कर रहा है।

सबल, स्वस्थ व्यक्ति का निर्माण देश की उत्थान-प्रक्रिया का महत्त्वपूर्ण अंग है। इस दृष्टि से यह उत्तरदायित्व शिक्षा संस्थानों पर है क्योंकि अध्यापक पीढ़ियों का निर्माता होता है। उसके हाथों में देश-दुनिया की डोर होती है। परिवार-विघटन, विवाह का टूटना, सम्बन्धों का टूटकर बिखरना, व्यक्ति का स्वकेन्द्रित होना, सामाजिक मान्यताओं में परिवर्तन, कानून के अनुसार नीति-नियमों में परिवर्तन, व्यक्ति स्वतन्त्रता, आदि के परिणामस्वरूप घर, परिवार अब मूल्य संवर्धन का कार्य करने में असमर्थ सिद्ध हो रहे हैं। इसीलिए यह कार्य अध्यापकों के हाथों में सौपा गया है। शिक्षा विभाग इसे अपना उत्तरदायित्व समझकर निभा रहा है। उसके अनुरूप पाठ्यक्रमों का निर्माण किया जा रहा है। महिला-पुरुष समानता, बेटियों की आवश्यकता, सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, मूल्यों के साथ-साथ संवैधानिक मूल्य, न्याय, स्वतन्त्र, समता और बन्धुत्व के मूल्यों के संवर्धन हेतु पाठ्य पुस्तकों में कहानियाँ, कविताएँ, पाठ्यपुस्तकेतर पाठ्यक्रम तैयार किया जा रहा है। अब बारहवीं कक्षा तक के पाठ्य-पुस्तकों में हम भारतीय संविधान के उस अंश को देखते हैं, जो न्याय, स्वतन्त्रता, समता और बन्धुत्व के मूलभूत मूल्यों को सिखाता है।

भारत के संविधान की उद्देशिका 'हम भारत के लोग, भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न समाजवादी पन्थ-निरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक गणराज्य बनाने तथा उसके समस्त नागरिकों को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता की प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सबमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखण्डता सुनिश्चित करने वाले बन्धुत्व बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज दिनांक २६ नवम्बर, १९४९ को एतत् द्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और समर्पित करते हैं।''*

* **१.** संविधान (बयालीसवाँ संशोधन) अधिनियम, १९७६ की धारा-२ द्वारा ३.१.१९७७ से 'प्रभुत्व-सम्पन्न लोकतन्त्रात्मक गणराज्य' के स्थान पर प्रतिस्थापित।

२. संविधान (बयालीसवाँ संशोधन) अधिनियमन, १९७६ की धारा-२ द्वारा ३.१.१९७७ से 'राष्ट्र की एकता' के स्थान पर प्रतिस्थापित।

उपर्युक्त भारत का संविधान बच्चों को दोहराने के

लिए कहा जाता है और बच्चे इसे पढ़ते और दोहराते भी हैं। इसका एक-एक शब्द हम जाँचें, परखें तो हम स्वयं विस्मित हो जाते हैं। जो मूल्य हम बच्चों में डालना चाहते हैं, बच्चों के मन में जिसके विकास की अपेक्षा रखते हैं, उसका विपरीत और विकृत रूप हम समाज में देखते हैं। पाठ्यक्रम में समाविष्ट रचनाओं में देखते हैं।

जैसे स्नातक प्रथम वर्ष के पाठ्यक्रम में समावेष्टित कहानी 'युद्ध' जो दो व्यक्तियों पर केन्द्रित हैं, किन्तु दो धर्म का प्रतिनिधित्व करती है। ऐसे में न्याय, स्वतन्त्रता, समता, बन्धुत्व आदि हम बच्चों को समझाएँगे, सिखाएँगे और पूर्ण रूप से मूल्यों का संवर्धन करने की कोशिश करेंगे, किन्तु जो मन के किसी कोने में खरोंचें हैं, उन पर मरहम कैसे लगाएँ, यह प्रश्न उपस्थित होता है। उपासना की स्वतन्त्रता कहाँ है? एक ओर समानता का मूल्य बच्चों में डालने की कोशिश करते हैं, तो दूसरी ओर, बेटा-बेटी में भेद की बात दिखती है। एक ओर बेटी बचाओ की बात होती है, तो दूसरी ओर बलात्कार की सूचनाएँ कानों पर आघात करती हैं। बेटी पढ़ाओं का नारा सुनते हैं, उस समय पढ़ी-लिखी बेटी नौकरी के क्षेत्र में झेल रही शोषण को याद करती है, चाहे वह शारीरिक शोषण हो या मानसिक। यदि वह जाति-जमातियों से ऊपर उठकर आगे बढ़ी हो, तो मानसिक शोषण जाति-धर्म, श्रेष्ठ-कनिष्ठ, संस्कार आदि के तानों से होता रहता है। तब शिक्षा से संवर्धित शिक्षा और ऐसे समय मूल्यों का प्रश्न खलता है।

पुरुष सत्ता में मात्र शोषण होता है, ऐसा नहीं, मूल्यों को पैरों तले कुचला जाता है, ऐसा भी नहीं है। जहाँ तक प्रत्यक्ष अनुभूति का प्रश्न है, वहाँ हम, जो मूल्यों के संवर्धन के ढोल पीटते रहते हैं, वहीं हम सबसे पहले मूल्यों को मसल देते हैं – स्त्रियों का सम्मान हो, न्याय, स्वतन्त्रता, समता का व्यवहार हो, इन मूल्यों के संवर्धन का उत्तरदायित्व स्वीकार करने वाली शिक्षा प्रणाली, संस्थाएँ, संस्था संचालक, संचालिका, प्रशासकीय अधिकारी, अन्य सेवक, सदस्य आदि स्वयं इन मूल्यों के अभाव के शिकार लगते हैं। वर्गभेद उनमें कूट-कूटकर भरा दिखता है।

समानता के नाम पर गिनी-चुनी महिलाओं को ही पुरुषों के बराबर समझा जाता है। जो पिछड़ी जन-जातियों के सक्षम रूप में कार्य करती हैं, जो पुरुष के समान ही परिवार की सदस्य हैं, वे समानता के न्याय से वंचित रह जाती हैं। वे सक्षम नहीं बनतीं, मूल्यों के अभाव में उपेक्षित और समानता के न्याय से वंचित रह जाती हैं।

युवाओ ! तुम्हें कहा जाता है – हम भारत के लोग, भारत को एक बनाने के लिए (समाजवादी, पंथनिरपेक्ष लोकतन्त्रात्मक गणराज्य) दृढ़ संकल्प करते हैं। युवा शक्ति समाजवादी, पंथनिरपेक्ष नहीं, बल्कि समाज को लेकर वादी बन रही है। वह अलग-अलग पंथ, जाति, धर्म, रंग, नेता, समाज सुधारकों का अपना निजी रूप दे रही है। पथभ्रष्ट हो रही है। पंथनिरपेक्ष नहीं, बल्कि निरपेक्ष रूप में अपने-अपने पंथों को बढ़ावा दे रही है और बन्धुत्व को समाप्त कर रही है। दुर्भाग्यवश कहना पड़ रहा है कि हम इन युवाओं को कौन-से मूल्यों की शिक्षा दे रहे हैं? किन मूल्यों की शिक्षा का, शिक्षा-संस्थानों द्वारा संवर्धन हो रहा है? सब का साथ, सब का विकास निश्चित रूप से हो रहा है।

पाठ्यक्रमों में वैविध्यपूर्ण महीन कौशल का समावेश किया गया है। उनमें व्यक्ति विकास, देश विकास का सूत्र पिरोकर, मूल्यों के अन्तर्गत समाविष्ट पाठ्यक्रम बनाए जा रहे हैं, लेकिन समाज की दशा और दिशा उपेक्षित हो रही है। सामाजिक स्थितियाँ एक ओर हैं और मूल्यों के संवर्धन की बात एक ओर है। समाज में दिन-दहाड़े रक्तपात हो रहे हैं, जीवित मनुष्य जलाए जाते हैं, गोलियाँ चलती हैं, बलात्कार होते हैं, बेटियों को कोख में ही मार दिया जाता है। अस्पतालों में जीता-जागता मानव लाश बनकर बाहर आता है। कहीं किडनी का हेर-फेर है, तो कहीं दिल का। अदालतों में सच को झूठ और झूठ को सच किया जाता है। पुलिस थानों में वारदातों की रिपोर्ट लिखने के लिये मिन्नतें करनी पड़ती हैं। व्यवस्था में टिके रहने के लिए मूल्यों को दाँव पर लगाया जाता है, रिश्वतखोरों को रिश्वत देनी पड़ती है, पेट को भरने के लिए तन नीलाम होते हैं। बर्बरता से भरी इस समाज-व्यवस्था को खुले आम समाचारपत्रों में पढ़ते हैं, टी.वी. चैनलों पर देखते हैं, तो कहीं खुली आँखों से देखकर धृतराष्ट्र और गान्धारी का रूप धरते हैं।

इस नए संवर्धित मूल्यों को बन्दरों ने भी स्वीकारा है। न्याय, स्वातन्त्र्य, समता, बन्धुता के लिए इन्होंने अपनी जबान पर ताला, आँखों पर पट्टी और कान में रुई ठूँस ली है। वे भी इस विसंगतियों से उब गए हैं। जैसी हमारी

युवा पीढ़ी – स्कूल, महाविद्यालय में जो पढ़ाया जा रहा है, वह जीवन एवं समाज में कहीं मेल नहीं खाता है। एक ओर बन्धुत्व की शिक्षा मिलती है, तो दूसरी ओर आरक्षण के लिये जुलूस निकलते हैं, हड़ताल होती है, जातियों के नाम पर बँटवारा होता है। बौद्धिक समानता का स्तर, वर्ण व्यवस्था, जाति-पाँति की व्यवस्था में समानता सूली पर टँगी मिलती है। कार्यालयों में काम करने वाले माता-पिता हरिजन होने के कारण शहरों से दूर जाते हैं। स्वजातीय परिजन शहरों में रहते हैं। न्याय का यह मूल्य ऐसा ही दिखता है। अनेक भेदों-उपभेदों को दूर रखने वाला मूल्य मात्र पढ़ने तक सीमित रहता है। एक ओर 'मातृदेवो भव' के पाठ पढ़े जाते हैं, तो दूसरी ओर 'औरत बेजगह होती है' की काव्य पंक्ति स्त्री विमर्श के नाम पर शिक्षा में संयुक्त होती है। ऐसे वातावरण में हम मूल्य संवर्धन की कितनी भी गतिविधियाँ करें, भारत का संविधान उनमें निहित अधिकार की बातें करे, सभी व्यर्थ प्रतीत होते हैं।

यदि हम परिवर्तन चाहते हैं, नए मूल्यों का संवर्धन चाहते हैं, तो परम्परागत मूल्य, संस्कार तथा समाज-व्यवस्था की मानसिकता को बदलना होगा, लोटा केवल बाहर साफ करने से नहीं चलेगा, उसे अन्दर से मलकर स्वच्छ करना पड़ेगा। केवल पाठ्यक्रम में मूल्य संवर्धन का समावेश करने से काम नही होगा, उसके लिए पहले जमीन तैयार करनी होगी। मन में जो भ्रान्तियाँ, कुरीतियाँ, परम्पराएं, झूठे आदर्श और खोखले दम्भ भरे पड़े हैं, उन्हें निकालना होगा। बच्चे स्कूल में कम और घर-परिवार, समाज में अधिक समय रहते हैं। पहले उस समाज और उसकी व्यवस्था को बदलना होगा, ताकि वे जो मूल्यों के रूप में विद्यालयों से पाएँगे, उसे ही समाज में देखेंगे, तभी हम सशक्त समाज का निर्माण कर सकेंगे। केवल पाठ्यक्रम इसे बदल नहीं सकता। जैसे बीज बोने के बाद सूरज की तपिश, चन्द्रमा की शीतलता और जल का सिंचन अनिवार्य है, वैसे ही मूल्यों के संवर्धन हेतु सशक्त, समृद्ध समाज अनिवार्य है, जो सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् होगा। ○○○

सन्दर्भ सूची – १. भारत का संविधान १२वीं कक्षा की पाठ्यपुस्तक **२.** मूल्य शिक्षा की हस्तपुस्तिका अध्यापकों के लिए **३.** स्नातक प्रथम वर्ष २०१९-२०२० से प्रारम्भ पाठ्यपुस्तक, सावित्री बाई फुले पुणे विश्वविद्यालय पुणे, अध्ययन मण्डल द्वारा सम्पादित। **४.** स्नातक द्वितीय वर्ष पाठ्यपुस्तक, सावित्रीबाई फुले पुणे विश्वविद्यालय पुणे, अध्ययन मंडल द्वारा संपादित। **५.** युद्ध कहानी - शानी **६.** बेजगह कविता – अनामिका

कविता

महारास का मास

श्रीधर द्विवेदी, मेदिनीनगर, झारखण्ड

कार्तिक कृतिका पूर्णिमा, राका पूर्ण मयंक।
निधिवन निशि निकुंज में, राधा हरि के अंक।।०।।

आदिदिवस था आदि कल्प का, सजा धजा गोलोक।
कल्पतरु से बना था मंडल, मध्य रास आलोक।।१।।

अगरु कुमकुम कस्तूरी भरे, पूरित चौक पुनीत।
दधि लावा लाजा दूर्वादल, मणिमय रत्न जड़ीत।।२।।

कदली तरु के खम्भ गड़े थे, चंदन-वन्दनवार।
शोभित दीपक रत्न ज्योति से, दीप्त सुमण्डल सार।।३।।

तीन कोटि वेदी रचकर थी, शोभित अमित अपार।
दिव्य धूप सुगन्ध परिपूरित, प्रकटा रस श्रृंगार।।४।।

इस सज्जा में झलक रहा था, माधव का ऐश्वर्य।
विधि हरि शम्भु विलोक रहे थे, भरे नयन आश्चर्य।।५।।

सब बेदी के मध्य एक थी, बेदी बनी विशाल।
उस बेदी के मध्य विराजे, माधव यशुदा लाल।।६।।

देव वृन्द आश्चर्य चकित थे, अद्भुत रूप निहार।
पता नहीं क्या होगी लाला, एक निरख सुतधार।।७।।

तब तक हरि के वाम पार्श्व में, हुआ एक विस्फोट।
पूंजी-भूत सौन्दर्य जगत् की, प्रकट षोडशी छोट।।८।।

अंग सुकोमल दबे हुए थे, अतिशय यौवन भार।
शोभित अधर अरुण रतनारे, दहक रहे अंगार।।९।।

दशन दमक से मौक्तिक आभा, लगती मानो झूठ।
शतशः चन्द्र शरत राका मुख, शोभित परम अनूठ।।१०।।

कौन कहे शोभा सीमन्त की, पंकज चारु सुनैन।
नासा सुगढ़ कपोल सु चित्रित, बोल मधुर पिक बैन।।११।।

मणिमाला धारित सु कण्ठ में, केयूर कंकण रत्न।
सिन्दूर शोभित ललित भालपर, मालति माल सुयत्न।।१२।।

प्रकटी वाम पार्श्व में हरि की, हरि की ही आह्लाद।
कृष्णाराधित हुई राधिका, चिर-सहचरी प्रसाद।।१३।।



रामगीता (७/४)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार हैं। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज हैं। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने किया है। – सं.)



अब लंका के राक्षसों की हँसी क्या है? गोस्वामीजी ने शब्द लिखा – लंका के राक्षस हनुमानजी की हँसी उड़ाते हैं – अच्छा, यह बन्दर है? इसकी पूँछ देखो, इसकी शक्ल देखो, कैसी है ! गोस्वामीजी कहते हैं, लंका के राक्षस हनुमानजी को लात मारते हैं और हँसी उड़ाते हैं। पर उस हँसी का फल तो बड़े भयानक रूप में सामने आकर दिखाई दिया, जब पूँछ में कपड़ा लपेटा गया। कपड़ा आवरण है। तो ममता भी वस्त्र है, आवरण है। गान्धारी की आँख की पट्टी भी कपड़ा है, वह भी ममता का ही प्रतीक है। पर हनुमानजी की पूँछ को यदि ममता के रूप में मानें, तो लंका का वस्त्र उसे नहीं ढक सकता। लंका का तेल भी कम पड़ जाता है। तेल को स्नेह भी कहते हैं। स्नेह और ममता का बड़ा सम्बन्ध है। जिससे बड़ी ममता होती है, उससे आप का बड़ा स्नेह होता है। पर लंका के सारे स्नेह का भी कितना बड़ा दुरुपयोग है ! स्नेह के द्वारा व्यक्ति चिकना बनावे या स्वादिष्ट भोजन बनावे, तो मानो तेल का सदुपयोग हुआ और तेल डालकर आग लगाने की योजना हो, तो कितनी भयानक बात हो गई? यहाँ स्नेह जलाने के लिए उपयोग किया जा रहा है। सारे लंका का घी, तेल, कपड़ा समाप्त हो गया, पर हनुमानजी की पूँछ नहीं ढक पाई। हनुमानजी को लगा कि अगर यही खेल चलता रहा, तो काम आगे कैसे बढ़ेगा? तो हनुमानजी ने थोड़ा अपने को समेटा। हनुमानजी की पूँछ में आग लगाई गई, गोस्वामीजी ने कहा कि उस समय हनुमानजी की हँसी उड़ाई गई, उन्हें लात मारी गई और नगर में घुमाया गया – **मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी। (५/२४/६)**

सारे नगर में उन्हें घुमाया गया। यह बंदर चोर है, लंका में घुस आया था। महाराज ने इसे पकड़कर मँगवाया है। अब इसकी पूँछ में कपड़ा बाँधकर, तेल-घी डालकर जलाया जा रहा है। तुम लोग आकर देखो, आनन्द लो। ऐसा कहते हुए लंका के राक्षस हँसी उड़ा रहे हैं और उन्हें लात मार रहे हैं।

नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी।

हनुमानजी ने केवल जलाया नहीं, प्रजारी, आग लगा दी। उसके बाद हनुमानजी ने देखा। क्या?

पावक जरत देखि हनुमंता।

हनुमानजी ने ज्योंही अग्नि को जलते देखा, तो एक नयी कला का प्रयोग किया। यदि इस कला को आप गम्भीर अर्थों में समझना चाहें, तो ऐसे समझें। हनुमानजी की ममता का केन्द्र तो एक मात्र प्रभु हैं। प्रभु में जिसकी ममता है, वह ससीम तो हो ही नहीं सकता। वह तो असीम और अनन्त होगा। उस ममता को कोई जला भी नहीं सकता, नष्ट भी नहीं कर सकता। हनुमानजी के जीवन में कौन-सी कला है? किस तरह से वे हर परिस्थिति में अपने को परिवर्तित कर बुराई पर विजय प्राप्त करते हैं, वह समझने योग्य है। हनुमानजी के चरित्र में बार-बार आपको मिलता है, हनुमानजी कभी बहुत छोटे हो जाते हैं, कभी बहुत बड़े बन जाते हैं, कभी बिलकुल हल्के बन जाते हैं, कभी बहुत भारी बन जाते हैं। यह तो जादूगर की जादूगरी नहीं है, यह तो आध्यात्मिक संकेत हैं, सन्देश है। भारी होने का भी अर्थ क्या है, हल्का होने का अर्थ क्या है, बड़ा होने का तात्पर्य क्या है, छोटा होने का तात्पर्य क्या है, उन सबके अलग-अलग अर्थ हैं। जिस समय, जिस प्रकार की समस्या या जिस प्रकार का संकट आवे, हमें उस कला का प्रयोग करना चाहिए। कहाँ

बड़े होने में कल्याण है, कहा छोटे होने में कल्याण है, यह जानना चाहिए। उसका मूल तात्पर्य यह है कि अहम् को कभी बढ़ाना पड़ता है। पर जो अहम् को बढ़ाता है, दूसरे सन्दर्भ से उसका उद्देश्य, उसका तात्पर्य दूसरा है। जब वह अपने अहम् को बिल्कुल समेट लेता है, तो उसका प्रयोजन अलग है। व्यक्ति अगर अहम् को बढ़ा ले और समेट न सके, तब तो बड़ा दुखदाई हो जायेगा। इसलिए समेटना और फैलाना; दोनों आना चाहिए।

हनुमानजी प्रारम्भ से ही इस कला के महानतम आचार्य थे। जिस समय हनुमान जी लंका में पैठने के लिए चलते हैं, तो देवताओं को यह चिन्ता हुई कि अकेले हनुमानजी जा रहे हैं, लंका में इतने राक्षस हैं और उन राक्षसों में इतनी चामत्कारिक शक्तियाँ हैं। वहाँ जाकर क्या ये वहाँ से वापस आ सकेंगे? तब देवताओं ने सुरसा को बुलाया। यह सुरसा सर्पों की माता थी। देवताओं ने कहा कि तुम जाकर हनुमानजी की परीक्षा लो कि यह बन्दर लंका में जाकर क्या वहाँ से लौट पाएगा? अब आप उस पूरे संवाद को पूरे आध्यात्मिक सन्दर्भ से देखिए। यह सुरसा एक अर्थ में तो साक्षात् मृत्यु है, खा जाने वाली है। वह हनुमानजी से कहती भी है कि मैं तुम्हें खाऊँगी। साधक के जीवन में वह लोकैषणा का रूप है, कीर्ति की कामना है। हनुमानजी तो अभी सोने के पर्वत को छोड़कर आए हैं। जब कोई इतना बड़ा त्याग करता है, तो उसका बड़ा नाम होता है कि इन्होंने बड़ा त्याग किया, बड़े त्यागी हैं। जब इतने बड़े त्याग के बाद लोग प्रशंसा करें, तब तक तो कोई आपत्ति नहीं है। पर जिसने त्याग किया है, यदि उसी के मन में त्यागी कहलाने की इच्छा जागृत हो जाए, जिसकी सम्भावना रहती है, तो वह ठीक नहीं है। त्याग करना बहुत बड़ी बात है। थोड़ा-सा सोना छोड़ना ही कठिन होता है, यहाँ पर तो सोने का पर्वत ही हनुमान जी ने छोड़ दिया। लेकिन लोकैषणा इतनी प्रबल होती है कि मनुष्य त्याग करने के बाद यह चाहता है कि लोग उसकी प्रशंसा करें, उसकी कीर्ति हो। यही जीवन की सुरसा है, जो साधक के सामने आकर खड़ी हो गई। अधिकांश साधकों को मैनाक पर्वत ही रोक लेता है। साधन करने चले, शान्तिरूपा, मुक्तिरूपा, शक्तिरूपा सीताजी का दर्शन करने चले, किन्तु बीच में ही कोई मिल गया, कोई पद मिल गया, धन मिल गया, कोई चमत्कार आ गया, वहीं रुक गये। प्राय: लोगों को तो मैनाक पर्वत ही रोक लेता है। पर मैनाक पर्वत से भी जो आगे बढ़ जाता है, सुरसा उसको खा जाती है, लोकैषणा खा जाती है।

लोकैषणा की कला यह है कि सुरसा में मुँह फैलाने की बड़ी शक्ति है। लोकैषणा हमेशा बढ़ती जायेगी। नाम होगा, तो नाम किस सीमा तक हो और किन-किन रूपों में यह बढ़ता जाता है, इसका हम सब समाज में और अपने जीवन में दर्शन कर सकते हैं। यह लोकैषणा हनुमानजी के सामने खड़ी हो गई। हनुमानजी से कहती है, मैं तुम्हें खाऊँगी। ये रामायण के बड़े गम्भीर सूत्र हैं। सुरसा ने यह नहीं कहा हनुमानजी से कि तुम रावण के शत्रु के रूप में लंका जा रहे हो, इसलिए रावण ने मुझे भेजा है। किसने भेजा है? देवताओं ने मुझे भेजा है। देवताओं ने यह कहकर मुझे भेजा है कि यह बन्दर बड़ा त्यागी और विरागी है और तुम्हें भूख लगी है, तो जाकर इसे खा लो। आपने ध्यान दिया क्या? क्या है इसका तात्पर्य? लोकेषणा राक्षसों की प्रेरणा से नहीं आती, यह देवताओं की प्रेरणा से आती है। इसका अभिप्राय है कि लोकैषणा अच्छे काम के बाद ही आती है और अच्छे कार्य ही तो देवत्व हैं। जब भी आप अच्छा कार्य करेंगे, तो अच्छा कार्य करने के बाद ही लोकैषणा का आना स्वाभाविक है। इसलिए उस लोकैषणा का मूल राक्षस नहीं होगा, रावण नहीं हो सकता, देवता होगा –

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। ५/१/३

उसका संकेत और भी बड़ा सुन्दर। किसी व्यक्ति को त्यागी और विरागी कह दिया जाए और उस व्यक्ति को यही दिखाने की इच्छा हो जाए कि लोग मुझे त्यागी और विरागी कहें, तो बेचारे को इतना कष्ट उठाना पड़ता है, कितना नाटक करना पड़ता है कि जिसकी कोई सीमा नहीं। व्यक्ति अगर अच्छा कार्य करेगा, तो लोकैषणा होगी और लोकैषणा व्यक्ति को नए-नए रूप बनाने की प्रेरणा देगी। बड़ी अनोखी बात है। सुरसा देवताओं की प्रेरणा से आती है, पर खा जाती है। यह सद्गुण की प्रेरणा से आएगी और बाद में साधक को खा जाएगी। खा जाने का तात्पर्य है कि वह लोकैषणा ज्यों-ज्यों बढ़ती जाएगी, त्यों-त्यों मनुष्य दम्भी होता जाएगा। आप मुझे क्या कहते हैं, क्या कहकर स्तुति करते हैं, अगर हम बार-बार इसी को सम्हालने में लगे रहें, तब तो हो गया। रामकृष्ण परमहंसदेव की जीवनी में कितनी बढ़िया बात आती है। उनके चरित्र की दिव्यता, उनकी सरलता, उनकी लीला, जिसके माध्यम से वे दिव्य उपदेश देते हैं, वह प्रसिद्ध है। परमहंस देव के हाथ में बहुत

भीषण पीड़ा हो रही है। वे बड़े भावुक होकर, माँ कहकर पुकारते हैं। दर्द में कराह रहे हैं और माँ को पुकार रहे हैं। उनका हृदय नाम का एक सेवक था। कभी-कभी सेवकों को बहुत चिन्ता हो जाती है कि हमारे महात्माजी को कोई नकली महात्मा न समझ ले, कोई इनको ढोंगी न मान ले। पता चला कि थोड़ी ही देर में केशवचन्द्र सेन आने वाले हैं। तो हृदय ने कहा कि महाराज आपको इस तरह से रोते हुए देखकर वे क्या समझेंगे? इतने बड़े विद्वान आ रहे हैं और आपको इस तरह रोते देखकर वे सोचेंगे कि इसमें क्या विलक्षणता है ! थोड़ी देर तो आप किसी तरह चुप हो जाइए। मानो? दम्भ ऐसा दिखाइए कि जिससे लोगों की श्रद्धा बनी रहे। तो लीला में वे थोड़ी देर के लिए चुप हो गये। तो हृदय प्रसन्न हो गया कि हाँ, मान गये हमारी बात। पर जब केशवचन्द्र सेन आकर बैठे तथा उनके साथ आए अन्य लोग बैठे, तो और जोर से रोने लगे। कितनी पीड़ा हो रही है हाथ में, रूलाई आ रही है और देख नहीं रहे हो, वह कोने में बैठा हुआ हृदय मुझे घूर-घूरकर देख रहा है कि रोना मत। मैं तो माँ से कह रहा हूँ कि दर्द है और यह कह रहा है कि दिखावा ऐसा करो कि दर्द नहीं है। वही बात है। चेले भी यही चाहते हैं कि गुरुजी जैसे हम कहें, वैसा ही दिखावें, जिससे इनका रूप बना रहे। वे तो यही समझते हैं कि हम तो गुरुजी के स्वरूप की रक्षा कर रहे हैं। किन्तु यह यथार्थ नहीं है। वे तो महानतम अवतार हैं ही, महान संत हैं। वे सरल हृदय से जो है, जैसा है, उसे उसी रूप में कह देते हैं।

यह लौकेषणा जिसके हृदय में आ गई, वह व्यक्ति को दम्भी बनाए बिना नहीं रहेगी। दम्भ को ही अधिक से अधिक जीवन में अपनाना पड़ेगा ! इसलिए हनुमानजी तो बड़े प्रसिद्ध त्यागी और विरागी हैं। अभी सोने का पहाड़ छोड़कर आए ही हैं, तो विरागी हैं ही। अब सुरसा ने यह कहा कि विरागी जी, शरीर तो मिथ्या है, आप ज्ञानी भी हैं और मुझे लगी है भूख। देवताओं ने मुझे कहा कि तुम खा लो। तो आपके वैराग्य और त्याग की परीक्षा हो जायेगी। क्या? आप मुझे सहर्ष भोजन करने दें, मैं खा जाऊँ और आप कुछ न बोलें, तो सिद्ध हो जायेगा कि आप महान त्यागी-विरागी हैं। कितना बड़ा भुलावा देने का उपाय है। अगर हनुमानजी के हृदय में जरा भी उसका लेश मात्र भी होता, तो बात और थी। सुरसा ने जब कहा कि मुझे देवताओं ने भेजा है, मुझे भूख लगी है, मैं तुम्हें खाऊँगी। तो हनुमानजी ने कहा कि अभी नहीं। तो कब? बोले, पहले मैं श्रीराम का दूत बनकर जनकनन्दिनी के पास जा रहा हूँ। मैं श्रीराम का संदेश लेकर उनके पास जा रहा हूँ। उनका संदेश लेकर प्रभु के पास पहुँचाऊँगा। जब इतना काम मैं पूरा कर लूँगा, तब मैं आऊँगा और तब तुम मुझे खा लेना। उन्होंने कहा कि पहले मैं यह कार्य पूरा कर लूँ। वह कार्य था कि प्रभु का संदेश जानकी जी के पास, जानकी जी का संदेश प्रभु के पास देना। तब तुम्हारे पास आ जाऊँगा –

तब तव बदन पैठिहऊँ आई।

साधक के लिए लोकैषणा बहुत बाधक है। लेकिन जो दोनों का संदेश एक दूसरे के पास पहुँचा देगा, वह कृतार्थ हो जायेगा। दोनों का संदेश एक दूसरे के पास पहुँचाकर हनुमानजी ने क्या नहीं पा लिया ! प्रभु का संदेश जानकी जी को पहुँचा कर आप जानते हैं कि उन्होंने क्या पाया? उन्होंने बड़ी दिव्य वस्तु पा ली। गोस्वामीजी ने कहा –

मन संतोष सुनत कपि बानी।
भगति प्रताप तेज बल सानी।।
आसिष दीन्हि रामप्रिय जाना।।
होहु तात बल सील निधाना।
अजर अमर गुननिधि सुत होहू।
करहुँ बहुत रघुनायक छोहू।। ५/१६/१-३

यह संदेश सुनाने का इतना बड़ा पुरस्कार मिला, जिसे सुनकर हनुमानजी कहते हैं –

अब कृतकृत्य भयऊँ मैं माता।

माँ, मैं तो कृतकृत्य हो गया। प्रभु का संदेश माँ को सुनाया, तो माँ ने आशीर्वाद दिया। जब वहाँ से लौटने लगे, तो माँ से निवेदन किया, प्रभु ने मुद्रिका दी और उसके सहारे मैं यहाँ आ गया, आपकी कृपा मिल गई, अब आप भी तो कुछ दीजिए। तब –

चूड़ामनि उतारि तब दयऊ। ५/२६/२

जनकनन्दिनी ने चूड़ामणि उतार कर हनुमानजी को दिया। यह एक सांकेतिक भाषा है और सुन्दरकाण्ड में इसका बड़ा महत्त्व है। इस शब्द का प्रयोग सुन्दरकाण्ड में ही विशेष अर्थ में किया गया है। सुन्दरकाण्ड के प्रारम्भ में भगवान राम की वन्दना में जो श्लोक है, वह जो उपाधि है, वह

और कहीं नहीं है। और वह है –

शान्तं शाश्वतमप्रेयमनघं निर्वाणशान्तिप्रदं
ब्रह्माशम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिशं वेदान्तवेद्यं विभुम्।
रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं।

इन शब्दों में वन्दना करने के पश्चात् गोस्वामीजी एक शब्द जोड़ते हैं।

वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूड़ामणिम्।।
५/श्लोक/१

'भूपाल चूड़ामणिम्' जो समस्त भूपालों के चूड़ामणि हैं, वे हैं श्रीराम। चूड़ामणि अर्थात् शीर्ष भाग में जो आभूषण धारण किया जाता है वह चूड़ामणि है। माँ के द्वारा चूड़ामणि देने में एक ओर तो प्रभु का संकेत था कि तुमने मुझे यह मुद्रिका उस समय दी थी, जब केवट ने हमें नदी से पार उतारा था। पर उसे केवट ने नहीं लिया और इस समय मैं जानता हूँ कि तुम्हारे सामने और भी बड़ी समस्या है, तुम विरह समुद्र में डूब रही हो, तो मैं वह मुद्रिका जो केवट ने नहीं ली थी, वह तुम्हें संकेत के रूप में दे रहा हूँ कि यह मुद्रिका ले जाने वाला तुम्हें विरह-समुद्र से उबार लेगा। वही बात श्रीसीताजी ने हनुमानजी से कही –

बूड़त बिरह जलधि हनुमाना।
भयहु तात मो कहुँ जलजाना।। ५/१३/२

माँ ने चूड़ामणि देकर, 'भूपाल चूड़ामणिम्' देकर मानो संकेत के रूप में यों कहा कि जिसको आपने नाम की मुद्रिका देकर भेजा, मैं तो समझती हूँ कि आप भूपाल चूड़ामणि हैं, और यह भक्तचूड़ामणि है। महान भक्त की उपाधि चूड़ामणि के संदेश के द्वारा हनुमानजी को मिली। माँ के द्वारा मिली। उसके बाद जब भगवान हनुमानजी से बोले कि मैं तुम्हारे ऋण से मुक्त नहीं हो सकता, मैं तो तुम्हारे सामने मुख करने योग्य नहीं हूँ। तब हनुमानजी ने कहा –

नाथ भगति अति सुखदायनी।
देहु कृपा करि अनपायनी।। ५/३३/१

प्रभु ने प्रसन्न होकर एवमस्तु कहा। यह एक ऐसा अनोखा प्रसंग है कि गोस्वामीजी ने कहा कि इस प्रसंग को जो हृदय में धारण कर लेगा, उसको क्या मिलेगा? सारे काण्डों में इस प्रसंग की एक विशेषता है।

यह संबाद जासु उर आवा।
रघुपति चरन भगति सोइ पावा।। ५/३३/४

हनुमानजी को तो भक्ति प्राप्त है ही, पर यह संवाद अगर आपके अन्तःकरण में आ जाए, तो आपको भगवान की भक्ति प्राप्त हो जाएगी। यह दिव्य प्रसंग है, जिसकी अनेकानेक रूपों में व्याख्या की जा सकती है और अनेक रूपों में इसका विश्लेषण मेरे माध्यम से हुआ है। उसका भी संकेत यही है, हनुमानजी का अभिप्राय यही था कि लोकैषणा का ग्रास व्यक्ति तभी बनता है, जब वह साधक स्थिति में है। जब सिद्धि में स्थित हो गया, तब तो –

ग्यान अखंड एक सीताबर। ७/७७/ख/४

(क्रमशः)

पृष्ठ ४९० का शेष भाग

में मानना। रामानुजाचार्य (१०१७-११३७ ई.) ने भक्ति व उपासना को सरल बताकर जनता में प्रसार किया। उपासना में श्रद्धा का विशेष महत्त्व है, परन्तु निष्काम उपासना तो संस्कारों को क्षीण करके समता अवस्था प्राप्त कराती है। ऐसे निष्काम उपासक को निर्मलबुद्धि में ईश्वर भासता है, क्योंकि ईश्वर सम और निर्दोष है।

सारांशतः, जो देश और काल से नहीं बदलता, वह सत्य है और आत्मा का ऐसा ही स्वभाव है। ज्ञान, ध्यान, सेवा, भक्ति आदि साधन मनुष्य को उसका सही स्वरूप दिखाकर मुक्ति के योग्य बनाते हैं, जो सार्थक कर्म और सत्य की खोज है। अध्यात्म के सब साधनों में निर्मल मन अनिवार्य है। विचार-दृष्टि से संसार के सुख भी अन्त में दुख के समान ही होते हैं, क्योंकि इन्द्रियों की विषय-वासनाओं का अन्त नहीं है, यही माया है।

सुषुप्ति का जो द्रष्टा है, वही चैतन्य तुझमें हैं, इसी के नाम को सच्चिदानन्द कहते हैं। सम और निर्दोष मन में आत्मभाव होता है, उसी भाव में परमात्मा का बोध होता है। ○○○

सन्दर्भ : १. वेदान्त फिलोसॉफी : इंस्पायर्ड टॉक्स बाई स्वामी विवेकानन्द **२.** विवेक-चूड़ामणि : द्वारा आदि शंकराचार्य **३.** महाराज एस तोमर : "Ethics Ego and Soul" Voice of Asia published in Houston, Texas, vol.33 No.49 p.2, Nov.29, 2019

जीवन कौशल के विकास में शिक्षक एवं शिक्षण संस्थाओं की भूमिका

डॉ. प्रज्ञा अग्रवाल

एसोसियेट प्रोफेसर, हिन्दू कालेज ऑफ एजुकेशन, सोनीपत

प्रिय युवाओ ! शिक्षा के द्वारा हमें अपने बेहतर उत्तरदायित्व का बोध होता है। एक ओर जहाँ हम देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, भौगोलिक, ऐतिहासिक आदि स्थितियों का अध्ययन करते हैं, वहीं पर नित नये-नये वैज्ञानिक आविष्कारों की जानकारी प्राप्त होती रहती है। इन आविष्कारों को हम शिक्षा के माध्यम से देश और समाज को अवगत कराते रहते हैं। अत: यह आवश्यक हो जाता है कि हमें अब पाठ्यक्रम में सूचनापरक ज्ञान की अपेक्षा अभिवृत्तियों, मूल्यों, आशाओं, दक्षताओं, कौशलों आदि के विकास पर बल देना चाहिए। वर्तमान युग प्रतियोगिता का है। इस युग में प्रत्येक व्यक्ति योग्यता के पैमाने पर एक समान मिलेगा, ऐसा सम्भव नहीं है। जिस योग्यता के आधार पर एक व्यक्ति को दूसरे से अलग किया जा सकता है, वह है (कौशल) यानि गुणवत्ता, प्रेरणा, उत्साह और नेतृत्व की क्षमता। अध्यापकों में भी उन कौशलों को विकसित करने की आवश्यकता है, जिससे विद्यार्थियों में कौशल-निर्माण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके, विद्यालयी शिक्षा शिक्षार्थी के बहुआयामी व्यक्तित्व के विकास में सहायक होती है। वह ज्ञान संकल्पना मूल्य एवं कौशलों पर आधारित होती है, जिसके द्वारा न केवल बौद्धिक विकास होता है, अपितु शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक विकास भी होता है।

जीवन कौशल का अभिप्राय

वर्तमान प्रतियोगिता के युग में प्रत्येक व्यक्ति योग्यता के पैमाने पर एक समान नहीं हो सकता। व्यक्ति इन गुणों से ही एक-दूसरे से भिन्न दिखता है – (कौशल) यानि गुणवत्ता, प्रेरणा, उत्साह और नेतृत्व की क्षमता। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि व्यक्तित्व में गुणों का यह समूह होता है, जिसमें सामाजिक गरिमा, व्यक्तिगत आदतें, मित्रवत् व्यवहार और आशावादी दृष्टिकोण सम्मिलित हैं। अत: कोई व्यक्ति अपनी योग्यता तथा कौशल के बल पर ही दूसरों के साथ लाभकारी सम्बन्ध रखने तथा उसकी सार्थकता को सिद्ध करने में सफल होता है। इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं – Life skills are abilities for adopter and the behavior that enable indiviuals to deal effectively with demands and challenges of everyday life. It is a perosn's ability to maintain a state of well-being and to demonstrate this while interacting with others.

जीवन कौशल (Life Skills) के विवेचनीय विषय निम्नलिखित हैं – १. आत्मज्ञान (Self Awareness) २. समानुभूति (Empathy) ३. प्रभावी सम्प्रेषण (Effective communication) ४. निर्णय लेने की क्षमता (Decision Making Ability) ५. समस्या समाधान कौशल (Problem Solving Skills) ६.आपसी मेलजोल (Interpersonal Relationship) ७. सृजनात्मक चिन्तन (Creative Thinking) ८. विश्लेषणात्मक चिन्तन (Critical Thinking) ९. संवेगों पर समुचित नियन्त्रण (Control over Emotions) १०. तनाव से निपटना (Stress Management)

१. आत्मज्ञान : आत्मज्ञान जीवन कौशल का प्रमुख अंग है। व्यक्ति अपने अन्दर विद्यमान गुण-दोष, सबल एवं निर्बल पक्षों को ज्ञात कर ले तथा उन क्षेत्रों को पहचान ले, जो उसके जीवन में बाधक हैं। आत्मज्ञान द्वारा इन बाधाओं को दूर किया जा सकता है। आत्मज्ञान द्वारा सकारात्मक सोच विकसित कर नकारात्मक सोच का त्याग करना चाहिए। आत्मज्ञान के द्वारा अपने अधिकार, उत्तरदायित्व और मूल्यों की पहचान होती है।

२. समानुभूति : समानुभूति का तात्पर्य है, ''तुम्हें जो अनुभव होता है, वह मुझे भी अनुभव होता है।'' मानव स्वभाव का एक सकारात्मक पक्ष यह है कि यह दूसरों के सुख-दुख में भाग लेता है तथा उसकी अनुभूति को अपने

में समाहित करके सोचता है, भले ही वह अपने परिवार का सदस्य न हो। इससे स्पष्ट है कि ऐसे जीवन-कौशल से मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाकर हम एक सुयोग्य नागरिक बन सकते हैं।

३. प्रभावी सम्प्रेषण : अपने दृष्टिकोण को प्रभावी ढंग से दूसरों तक पहुँचाना जीवन के लिए बहुत उपयोगी एवं अत्यावश्यक कौशल है। सम्प्रेषण कई कारणों से किया जा सकता है, सूचित करने, शिक्षित करने, समझाने, प्रेषित करने, सहायता करने अथवा सबल करने के लिए। यह प्रक्रिया भी है। इन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सम्प्रेषण के कई माध्यम हैं और हर माध्यम सम्प्रेषण प्रभावी बनाने के लिए विशिष्ट कौशलों का प्रयोग किया जाता है।

४. निर्णय लेने की क्षमता : अच्छे चरित्र-निर्माण एवं बेहतर भविष्य के लिये व्यक्ति के अन्दर निर्णय लेने की क्षमता का कौशल विकसित होना चाहिए। विद्यार्थियों में अनेक प्रकार की समस्याएँ आती हैं – जैसे हाई स्कूल उत्तीर्ण होने पर विषय एवं वर्ग चयन करने में तथा विद्यार्थी भविष्य में जो व्यवसाय अपनाना चाहते हैं, उसमें उसकी प्रगति तथा विकास की क्या-क्या सम्भावनाएँ हो सकती हैं, उसका सम्यक् ज्ञान होना चाहिए, जिससे वे उचित निर्णय लेने में सक्षम हो सकें।

५. समस्या समाधान कौशल : जीवन में अनुकूल तथा प्रतिकूल स्थितियाँ सामने आती हैं। तरह-तरह की कठिनाइयों का सामना करते हुए मनुष्य को आगे बढ़ने का पथ प्रशस्त करना पड़ता है। जीवन में कभी-कभी विषम परिस्थितियों पर विजय पाने के लिए विभिन्न प्रकार के वैकल्पिक समाधान के अवसर प्राप्त होते हैं, पर व्यक्ति में ऐसा कौशल विकसित होना चाहिए कि जो विकल्प, समय एवं परिस्थिति के अनुसार सर्वथा उपयुक्त हो, उसे वह ग्रहण कर सके।

६. आपसी मेलजोल : जीवन में सफल होने के लिए मनुष्य को आपसी मेलजोल बनाकर रहना चाहिए। मेलजोल उन्हीं से होता है, जो आपकी तरह सकारात्मक विचार रखते हैं। यदि आप सकारात्मक सोच तथा रचनात्मक दृष्टकोण रखते हैं, तो उससे चिर-परिचित तथा प्रथम बार सम्पर्क में आने वाले उन परिचितों का ऐसा संसार निर्मित होगा, जो व्यक्ति को समाज और जनहित के कार्यों में प्रवृति करने में सहायक होता है। अत: जब व्यक्ति का स्वभाव व्यक्तिगत पहचान के स्तर से ऊपर उठकर साथी के साथ खुले मन एवं परोपकारी विचारों के साथ सामंजस्य बनाने में सक्षम हो जाता है, तभी अवैयक्तिक सम्बन्ध का प्रादुर्भाव होता है। ऐसे व्यक्ति सबके लिए सम्माननीय होते हैं। यही सम्बन्ध आगे मित्रता का रूप लेता है। मेरा विश्वास है कि आपसी मेलजोल विश्वास पर आधारित होते हैं। अत: इसमें विश्वसनीयता, स्थिरता, सम्मान, निष्पक्षता, खुलापन, समता, निपुणता, ईमानदारी, स्वीकृति तथा चरित्र का समावेश होना चाहिए।

७. विश्लेषणात्मक चिन्तन : इस प्रकार के चिन्तन का कौशल हमें किसी स्थिति विशेष में जुड़ी सूचनाओं, तथ्यों, अनुभवों आदि का विश्लेषण करने तथा वस्तुनिष्ठ ढंग से विचार कर समायोजित निर्णय लेने में सहायता प्रदान करता है। मानव जीवन में अनेक घटनाएँ घटती हैं। कभी-कभी विषम सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। इस स्थिति में सूचना की प्रामाणिकता, विकल्पों को परखना, कारण जानना तथा साक्ष्यों पर अपना दृष्टिकोण निर्मित कर विश्लेषण करना चाहिए।

८. संवेगों पर समुचित नियन्त्रण : मनुष्य में ऐसे कौशलों का निर्माण होना चाहिए, जो अपने संवेगों पर नियन्त्रण रख सके। तीव्र संवेग, जैसे क्रोध, दुख, मनुष्य का स्वास्थ्य, तीव्र सामाजिक परिवर्तनों ने किशोरों के जीवन, अपेक्षाओं तथा दृष्टिकोणों को पूर्ववत् मान्यताओं से अलग कर दिया है। अत: नई मान्यताओं एवं नई सोच के साथ कौशल विकास पर बल देना आवश्यक है।

अध्यापकों के लिए कौशल – युवा साथियो ! आपको ज्ञात हो कि विद्यार्थियों में विद्यमान कौशल को उभारने का कार्य शिक्षक ही करता है। अत: अध्यापकों में भी उन कौशलों को विकसित करने की आवश्यकता है, जिससे विद्यार्थियों में कौशल-निर्माण के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। क्योंकि इसके पाठ्यक्रम के कई प्रसंग सांस्कृतिक पक्ष में संवेदनशील हैं। विद्यार्थियों को जीवन कौशल विकास शिक्षा के व्यावहारिक पक्षों को उद्घाटित करने के लिए आध्यापकों में कम से कम निम्नलिखित कौशल विद्यमान होना चाहिए –

१. सम्प्रेषण कौशल – अध्यापकों को सम्प्रेषण से ओतप्रोत होना चाहिए। क्योंकि वह सदैव विद्यार्थियों के सम्पर्क में रहता है। जब वह अपने विद्यार्थी से किसी प्रसंग पर

चर्चा कर रहा हो, तो उसे इन कौशलों को अपनाना चाहिए।

२. घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करना – सम्प्रेषण के समय अध्यापक को विद्यार्थी से परस्पर सम्मान तथा विश्वास पर आधारित स्वाभाविक सम्बन्ध बनाना चाहिए।

३. सक्रिय श्रवण – वक्ता क्या और कैसे कह रहा है, इसे जानना आवश्यक है। जब अध्यापक वक्ता हो, तो विद्यार्थियों को ध्यान से सुनना चाहिए और जब विद्यार्थी बोले, तो अध्यापक को ध्यान से सुनना चाहिए।



४. ध्यान देना – अध्यापक को पढ़ाते समय विद्यार्थियों के हाव-भाव और रुचि पर ध्यान देना चाहिए।

५. बोलना – सम्प्रेषण के समय शिक्षक को उचित स्वर बनाए रखना चाहिए, वार्तालाप में एकाधिकार न हो।

६. प्रश्न करना – सम्प्रेषण के दौरान शिक्षक चाहे, तो प्रश्न कर सकते हैं, जिससे यह पता लगता है कि विद्यार्थी आपकी बातों में कितनी रुचि ले रहा है।

७. अपने मूल्यों को न थोपने का कौशल – मूल्यपरक शिक्षण के दौरान शिक्षक का यह दायित्व है कि वह अपने स्वयं के विचार, भावनाओं को विद्यार्थियों के ऊपर जबरदस्ती न डाले।

यह तभी सम्भव है, जब शिक्षक विद्यार्थियों में निम्नलिखित कौशल-विकास की आवश्यकता को स्वीकार करें – (१) विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि (२) उनके मूल्यों एवं विचारों की विविधताओं को ध्यान में रखना चाहिए। (३) मूल्यपरक प्रसंगों की चर्चा में अपने मूल्यों को दूर रखना चाहिए। उसे विद्यार्थियों को विश्वास दिलाना चाहिए कि कोई भी मत या विचार अविश्वसनीय नहीं है। (४) शिक्षक को उपदेश देने वाला नहीं होना चाहिए, क्योंकि उपदेशात्मक विधि का गलत प्रभाव पड़ता है। (५) विद्यार्थियों के विचारों को सुनना चाहिए, क्योंकि प्रभावी शिक्षण द्वारा विभिन्न विचारों पर चर्चा होती है तथा शिक्षण सफल माना जाता है। (६) अध्यापक को छात्र को समस्या के रूप में नहीं देखना चाहिए, बल्कि यह समझना चाहिए कि उन्हें सहानुभूति एवं सहायता की आवश्यकता है। (७) संवेदनशीलता का कौशल – इस कौशल के द्वारा छात्रों की समस्याओं पर सहानुभूतिपूर्वक ध्यान देना होगा। अध्यापकों को इस कौशल की आवश्यकता है। इसी से वे छात्रों की दुनिया तथा व्यवहार करने के ढंग को समझ सकेंगे।

विद्यार्थियों में कौशल विकास का ढंग विद्यालयी शिक्षा व शिक्षार्थी के बहुआयामी व्यक्तित्व के विकास में सहायक होता है। वह ज्ञान-संकल्पना मूल्य एवं कौशलों पर आधारित होती है, जिससे न केवल बौद्धिक विकास होता है, अपितु शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक विकास भी होता है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए विद्यालयी पाठ्यक्रम की उचित विभाग-विधि कौन-सी है, यह जानना आवश्यक है। सामान्यत: शिक्षण-विधि के दो प्रकार है – (१) पाठ्य-संक्रमीय (२) पाठ्य सहगामी। पाठ्य संक्रमीय विधि मुख्य रूप से ज्ञान पक्ष पर अधिक जोर देती है, जो केवल परीक्षा उत्तीर्ण कराती है, किन्तु लक्ष्यों को प्रभावित नहीं कर पाती है। इन लक्ष्यों को उसी शिक्षण विधि से प्राप्त किया जा सकता है, जो शिक्षार्थी को मात्र श्रवण से आगे बढ़कर उनको सोचने-समझने और अनुभव करने और क्रियाशील होने का अवसर दे। पाठ्य सहगामी गतिविधियों में उपर्युक्त अवसरों को प्रदान करने की अद्भुत क्षमता है।

निष्कर्षत:, ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना मानव है, जिनमें सोचने-समझने एवं अच्छा जीवन जीने की कला होती है। यदि हम अपने अन्तर्निहित कौशलों का विकास करें, तो निश्चय ही हम एक सफल मानव बन सकते हैं। अत: हमारा मत है कि शिक्षक अपनी पारम्परिक शिक्षण प्रणाली को परिष्कृत, परिमार्जित तथा नवाचार को अंगीकृत कर विद्यार्थियों में अन्तर्निहित कौशलों का विकास करें, जिससे बहुआयामी कौशलों से परिपूर्ण नागरिक का निर्माण हो सके। ○○○

सन्दर्भ ग्रन्थ – **१.** किशोरावस्था में कौशल विकास एन.सी.ई.आर.टी. न्यू दिल्ली। **२.** शिक्षक सन्दर्शिका, राज्य शिक्षा संस्थान उ.प्र. इलाहाबाद। **३.** अभिनय पत्रिका, सीमैट (उ.प्र.) इलाहाबाद। **४.** शिक्षा मनोविज्ञान एवं मापन लाल रमन बिहारी एवं जोशी सुरेश चन्द्र, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ **५.** विशिष्ट शिक्षा, सिंह बी.बी. एवं ग्वाडी एन. सी. वैशाली प्रकाशन, गोरखपुर **६.** मन्दबुद्धि दब्बू और अपराधी बच्चों की सही शिक्षा, तरुण हरिवंश क्वालिटी ऑफसेट, दिल्ली **७.** शिक्षा मनोविज्ञान एक परिचय, पाण्डेय श्रीधर एवं शिक्षा शाम्भवी, भवदीय प्रकाशन, अयोध्या, फैजाबाद।

व्रज में श्रीमाँ सारदा

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन

(गतांक से आगे)

वृन्दावन के बन्दर – 'एक दिन निकुंजवन में सभी लोग विनोदप्रिय बालक की भाँति बन्दरों को भुने हुए चने और केले खिला रहे थे। उनके उल्लास और प्रसन्नता को देखकर माँ ने कहा, राम-भक्त बन्दर कृष्ण भक्त भी हैं। त्रेतायुग में सीता के उद्धार के लिए पुल-निर्माण के समय जब समुद्र तट पर वानर भूख-प्यास से व्याकुल होकर भोजन करना चाह रहे थे, तब रामचन्द्र ने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा था, मुझे यहाँ रेत और खारे जल के अतिरिक्त कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। द्वापर युग में वृन्दावन-लीला के समय मैं तुम्हें बहुत-सी अच्छी-अच्छी वस्तुएँ खाने को दूँगा।''[६३]

वर्तमान समय में बन्दरों का उपद्रव देखने को मिलता है। बन्दर लोगों को आभास भी नहीं होने देते और चुटकियों में चश्मा लेकर चले जाते हैं। फ्रूटी पाने के लिए वृन्दावन के बन्दर ऐसा करते हैं और इसके लिए ये अब प्रसिद्ध हो गये हैं। श्रीमाँ के वृन्दावन-प्रवास के समय भी बंदरों के कुछ उल्लेख मिलते हैं। श्रीमती क्षीरोदबाला राय अपने संस्मरण में कहती हैं कि लक्ष्मी दीदी उनसे कहती हैं कि वे माँ से कहें कि वह वृन्दावन जाना चाहती है। पाठकों की सुविधा के लिए हम बता दें कि लक्ष्मी दीदी का बहुत ध्यान रखना पड़ता था। तब श्रीमाँ कहती हैं, 'वह वृन्दावन में रहना चाहती है, वहाँ बन्दरों का जैसा उपद्रव है, वह क्या वहाँ रह पाएगी?'[६४]



काला बाबू कुंज का माँ सारदा कुटीर में परिवर्तन – वर्तमान समय में 'काला बाबू कुंज' को 'माँ सारदा कुटीर' के नाम से जाना जाता है। चूँकि इस भवन में श्रीमाँ सारदा देवी ने लम्बे समय तक निवास किया था, इसलिए रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन ने इस भवन को अधिकृत करने के पश्चात् इसका नवीन नाम 'माँ सारदा कुटीर' दिया है। सन् २००० में तत्कालीन सह-संघाध्यक्ष श्रीमत् स्वामी गहनानन्दजी महाराज ने काला बाबू कुंज को रामकृष्ण मिशन में अधिकृत करने की इच्छा व्यक्त की। हालाँकि उनके स्थूल देह के रहते इस कार्य में विशेष कोई प्रगति नहीं हुई। कई वर्षों से वंशानुगत रूप से पुजारियों ने इस स्थान का अतिक्रमण करके रखा था। अतिक्रमण को हटाने के उद्देश्य से १९९२ में काला बाबू कुंज के मालिक श्री राघवेन्द्र बोस (तुतु बाबू) ने इस भवन को १० लाख रुपये में दस दलालों को बेच दिया, परन्तु वे भी इस स्थान को अधिकृत करने में सक्षम न हो सके। २००८ में स्वामी सुप्रकाशानन्द जी, श्री राघवेन्द्र बोस दो स्वयं सेवक तथा दलालों की वृन्दावन में एक मीटिंग हुई। उस मीटिंग में काला बाबू कुंज को क्रय करने के लिए एक करोड़ की राशि निर्धारित की गई। किन्तु इसके बाद भी इस भवन को अधिकृत करने में बहुत-सी समस्याएँ आने लगीं। जैसे विभिन्न प्रकार की धमकियाँ, बन्दूक दिखाना आदि होने लगीं। अन्त में इस नियम और शर्तों के अनुसार रजिस्ट्री हुई कि पूरे भवन का चौथाई हिस्सा जिसमें श्रीमाँ निवास किया करती थीं, वह रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम वृन्दावन का होगा तथा तीन चौथाई भाग के चार भाग होंगे, जिसके एक-एक भाग तीनों पुजारी भाई और एक भाग माफिया लोगों के नाम रजिस्टर्ड होगा। इस प्रकार पुजारियों का मालिकाना अधिकार न होते हुए भी उन्हें वह भाग प्राप्त हो गया। पुजारियों को अधिकार मिल जाने के पश्चात् उनकी बहनें भी स्थान खाली करने में बाधा देने लगीं, जो श्रीमाँ के कक्ष में निवास करती थीं। इस समस्या से निवृत होने के लिए उन लोगों के लिए दो लाख रुपये व्यय करके एक कमरा बनवा दिया गया। अन्त में वह कमरा जहाँ श्रीमाँ सारदा देवी रुकी थीं और

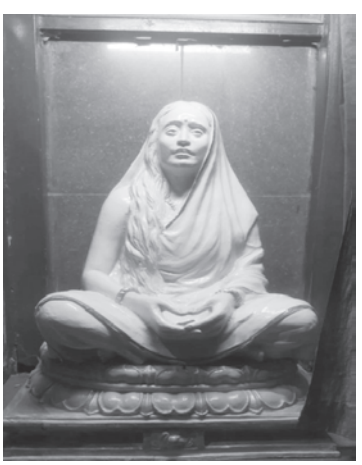
उसके आसपास का क्षेत्र १७ जनवरी, २००९ को रामकृष्ण मिशन, वृन्दावन के अधिकार में आ गया।

तत्पश्चात् काला बाबू कुंज के जीर्णोद्धार का कार्य प्रारम्भ हुआ। वर्तमान सचिव स्वामी सुप्रकाशानन्द जी तथा स्वामी ऋतात्मानन्द जी ने दोल गोविन्द बाबू की सहायता से इस भवन के जीर्णोद्धार का कार्य सम्पन्न किया। पुराने समय के भवन के निर्माण की प्रक्रिया को अपनाते हुए चूना और सुर्खी के द्वारा ही इस निर्माण-कार्य को पूर्ण किया गया। जिस समय रामकृष्ण मिशन ने इस भवन को लिया, उस समय यह बहुत जीर्ण स्थिति में था, जिसे हम उस समय के फोटो के माध्यम से देख सकते हैं। काला बाबू कुंज का प्रवेश-द्वार उत्तर-पूर्व की ओर था। परन्तु रामकृष्ण मिशन को वह अंश प्राप्त न होने के कारण इस भवन का द्वार दक्षिण की ओर किया गया। माँ के निवास कक्ष को मन्दिर का स्वरूप देने के लिए उस कक्ष के ऊपर मन्दिर की भाँति शिखर बनाया गया





जिसके शिखर की आकृति बेलूड़ मठ के श्रीरामकृष्ण देव के मन्दिर से मिलती-जुलती है। माँ के कक्ष की ओर जाने के लिए नई सीढ़ियाँ बनाई गई हैं। इस प्रकार इस भवन के जीर्णोद्धार के लिए बहुत से परिवर्तन करने पड़े, परन्तु माँ के कक्ष का फर्श, खिड़की (जिससे श्रीमाँ नीचे मन्दिर में पूजित श्याम सुन्दर जी का दर्शन किया करती थीं), द्वार (स्नानागार जाने के लिये बना दरवाजा जो कि उस खिड़की के सामने स्थित है), स्नानागार तथा स्नानागार से पीछे की ओर जाने वाली सीढ़ियाँ (जिन सीढ़ियों के द्वारा माँ यमुना दर्शन के लिए जाया करती





थीं) तथा उन सीढ़ियों के ऊपर स्थित पानी की टंकी यथावत् रखी गयी हैं। उन सीढ़ियों और पानी की टंकी का कार्य जयनगर के कारीगरों ने किया था। जिस समय यह भवन अधिकृत किया गया, उस समय तत्कालीन पुजारियों ने एक खाट भी दिया, जिसे उन लोगों ने श्रीमाँ के द्वारा प्रयोग किया गया बताया, जो कि आज इस भवन के संग्रहालय में संरक्षित है। वर्तमान में श्रीमाँ के निवास-कक्ष को प्रार्थना-कक्ष के रूप में रखा गया है। इसके पीछे एक कक्ष है, जिसे ठाकुर भण्डार के रूप में प्रयोग किया जाता है। इसके नीचे के कक्षों को उन दिनों अभ्यागत साधुओं के रहने के लिए दिया जाता था। अब उसे साधु-निवास तथा संग्रहालय का स्वरूप प्रदान किया गया है। जिस पीछे की सीढ़ी को संरक्षित रखा गया है, वहाँ एक छोटा आँगन है। इसमें श्रीमाँ की एक सुन्दर प्रतिमा स्थापित है जिसे सारगाछी आश्रम में स्वामी विश्वमयानन्द जी द्वारा बनवाई गयी थी तथा वेदी का निर्माण अंडमान के कारीगरों ने किया था। इस जीर्णोद्धार के कार्य में लगभग एक करोड़ रुपये खर्च हुए। श्रीमत् स्वामी प्रभानन्द जी महाराज तथा स्वामी अच्युतानन्दजी महाराज के अनुसार श्रीमाँ का इस भवन में आगमन १२ सितम्बर, १८८६ को हुआ था। अत: इसी दिन को ध्यान में रखकर १२ सितम्बर, २०१२ को रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के तत्कालीन दीक्षा गुरु श्रीमत स्वामी वागीशानन्द जी महाराज के कर कमलों से इस भवन का उद्घाटन हुआ। ○○○ **(समाप्त)**

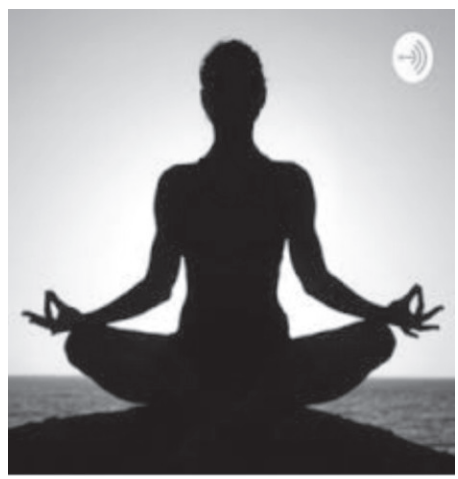
सन्दर्भ-सूत्र — **५०.** माँ की बातें, पृ. ११६ **५१.** वही, पृ.१०३ **५२.** सारदा रामकृष्ण १४२-१४३ **५३.** माँ की बातें, पृ. ३४० **५४.** श्रीमाँ सारदा देवी, पृ. ३५५ **५५.** वही, पृ. १५६ **५६.** वही, पृ. १४४ **५७.** श्रीमद्भगवद्गीता ३/२१ **५८.** माँ की बातें, पृ. ८५ **५९.** वही, पृ. ३५१-३५३ **६०.** श्रीमाँ सारदा देवी पृ. ११८-११९ **६१.** माँ की बातें, पृ. ३२५-३२६ **६२.** श्रीमाँ सारदा देवी,१२०- १२१ **६३.** सारदा रामकृष्ण १४२-१४३ **६४.** माँ की बातें ३९

मनोनिग्रह सबसे बड़ा पुरुषार्थ

डॉ. विजय प्रकाश त्रिपाठी

सम्पादक, हिन्दू विश्व

मनुष्य के व्यक्तित्व की केन्द्रीय धुरी मन है। शुद्ध, निर्मल, पुष्पों जैसे कोमल मन में शुद्ध सम्वेदनाएँ, सात्त्विक विचार, उत्कृष्ट प्रेरणाएँ सदैव लहरें लेती रहती हैं। इन पुष्पों से सुन्दर, शुद्ध, पवित्र मन का प्रभाव मनुष्य के व्यवहार एवं व्यक्तित्व पर पड़ता है। प्रसन्न मन अपने निकट के वातावरण में उसी प्रकार प्रसन्नता भर देता है। दूसरी ओर, जब मन में ईर्ष्या-द्वेष, घृणा, क्रोध-वैमनस्य आदि के भाव उबलते रहते हैं, तब वे दूसरे के मन में भी इस प्रकार तीक्ष्ण काँटों की चुभन जैसी प्रतिक्रिया उत्पन्न करते रहते हैं। मन के ये सब भाव छिपाए नहीं छिपते, अपितु उनका वास्तविक रूप प्रकट होकर ही रहता है। अपने मन से कोई भी चोरी, छल एवं झूठ नहीं चल सकता। वह अपनी प्रत्येक गतिविधि को जाँचता रहता है और उनके औचित्य-अनौचित्य पर निर्णय भी देता रहता है। अतएव मन से बचकर रहना सम्भव नहीं है। मन सही बात किसी न किसी रूप में प्रकट कर ही देगा। प्राय: व्यक्ति अपने पवित्र भाव का दावा करते हैं, लेकिन अवसर पाते ही उनके मनोभाव चेहरे पर, नेत्रों में, माँसपेशियों में उभर आते हैं। कभी वाणी से फूट पड़ते हैं, तो कभी व्यवहार से। उस समय कृत्रिम व्यक्तित्व की समस्त दीवारें धराशायी हो जाती हैं। परिष्कृत मन के बिना ऊपर से प्रदर्शित किया जाने वाला व्यक्तित्व मन के प्रचण्ड चक्रवात के एक ही थपेड़े से बालू के महल की तरह न जाने कहाँ उड़-बिखर जाता है।



मात्र अभिव्यक्ति के इन विविध रूपों में ही नहीं, मौन की स्थिति में मन:स्तर अपना प्रभाव दिखलाता है। मन के विचारों का वातावरण पर स्पष्ट प्रभाव पड़ता है। शुद्ध मन वाला व्यक्ति जहाँ रहता है, वहाँ का पर्यावरण भी उस शुद्धता से प्रभावित होता है। जिस कमरे में सात्त्विक लोग निवास करते हैं, वहाँ कोई अन्य विरोधी व्यक्ति विचार लेकर आए भी, तो उसके विचार वहाँ डूब जाते हैं। इसके विपरीत, अनुचित क्रिया-कलापों के केन्द्रों, जुआघरों, शराबखानों आदि का प्रभाव भी इतना तीव्र होता है कि इन स्थानों को समाप्त कर दिए जाने के उपरान्त भी वहाँ का वातावरण तब तक दूषित रहता है, जब तक कि वहाँ कुछ समय तक श्रेष्ठ गतिविधियाँ न चलती रहें।

सन्त हृदय, ब्रह्मलीन आचार्य गोरेलाल जी का स्पष्ट मत है कि उत्कृष्ट विचारों वाले व्यक्ति के सान्निध्य में लोग अपना दुख-दर्द भूल जाते हैं, जबकि हीन विचारों वाले व्यक्ति का सान्निध्य घुटन उत्पन्न करता है। जिस घर-परिवार में किसी की मृत्यु हो जाती है, वहाँ पर जाते ही लोगों के मन को एक प्रकार के अवसाद की आघातकारी तरंगें घेर लेती हैं। आयोजन-समारोह, उत्सव-पर्व, यज्ञोपवीत-विवाह के मण्डप आदि स्थलों में प्रवेश करते ही उल्लास की तरंगें मन में उभर आती हैं। ये सब मानसिक स्थितियों के सूक्ष्म प्रभाव हैं। इसलिए शास्त्रों में सत्संग की महिमा का गुणगान है। सत्पुरुषों का सान्निध्य दिव्य विचारों की तरंगों से मन को भर लेता है।

मन जब प्रमादी और अपव्ययी होता है, तो इन्द्रियाँ उसके खजाने को खुला पाकर उस धन को वैसे ही लुटाती रहती हैं। इन्द्रियाँ द्वार हैं, जो मन के जागरूक रहने पर स्वयं आवश्यकतानुसार ही खुलती हैं, शेष समय बन्द रहती हैं। असंयमी, दुर्बल मन का इन्द्रियों पर नियन्त्रण नहीं रहता

शेष भाग पृष्ठ ५०५ पर

एक शिक्षक को मिली शिक्षा

श्रीमती गीतांजलि मुरारी

अनुवाद – स्वामी पद्माक्षानन्द और श्रीधर कृष्ण

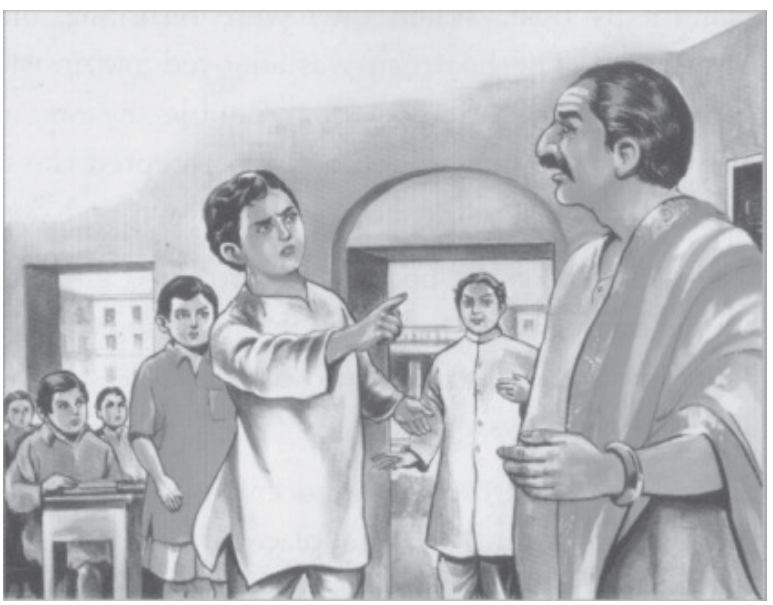
(यह लघु-कथा नरेन्द्रनाथ दत्त, जो बाद में स्वामी विवेकानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुए, की कहानियों की एक शृंखला है। इसमें उनके बचपन की घटनाओं की प्रस्तुति है। प्रत्येक कहानी वास्तविक घटनाओं का एक काल्पनिक पुनर्लेखन है। श्रीमती गीतांजलि मुरारी द्वारा लिखित ये कहानियाँ श्रीरामकृष्ण मठ, चेन्नई द्वारा प्रकाशित अंग्रेजी पत्रिका 'वेदान्त केसरी' में लघुकथा के रूप में प्रकाशित हुई हैं। – सं.)

''सुबीर सर आ रहे हैं,'' हरि ने अपनी सीट की ओर दौड़ते हुए सबको सावधान किया। कक्षा के छात्र तुरन्त चुप हो गए। पतले, अँधेड़ उम्र के एक आदमी धीरे से कमरे में आये, उनकी तीक्ष्ण आँखों ने छोटे, डरे हुए चेहरों को देखा। लेकिन जब उन्होंने नरेन की ओर देखा, तो उनका चेहरा गम्भीर हो गया। नरेन उन्हें देखकर खुशी से मुस्करा रहा था।

''मुझे देखकर मुस्कुराना बन्द करो,'' सुबीर सर ने कहा। ''अपनी पुस्तक के इक्कीसवें पृष्ठ को खोलो और कविता को जोर से पढ़ो।''

नरेन की अभिव्यंजक आवाज ने उसके सहपाठियों को मन्त्रमुग्ध कर दिया और जैसे ही उसने पहला पद समाप्त किया, शिबू ने अनायास ही ताली बजाई।

''तुमने पाठ में बाधा डालने की हिम्मत कैसे की?'' सुबीर सर ने शिबू की ओर देखा। कक्षा में एक भय का





वातावरण बन गया, सबकी दृष्टि शिक्षक के हाथ में डण्डे पर टिकी रही। उन्होंने कहा ''खड़े हो जाओ,'' और छात्र को मारने लगे। पिटाई से बचने की कोशिश में शिबू ने लाठी पकड़ ली। 'सर,' उसने अपनी अश्रुपूरित आँखों से विनती की, ''मुझे बहुत खेद है ... मैं फिर कभी कक्षा में बाधा नहीं डालूँगा।''

शिक्षक ने छड़ी को खींचा, लेकिन शिबू ने दोनों हाथों से उसे कसकर पकड़ लिया। ''इसे तुरन्त छोड़ दो,'' सुबीर सर ने आज्ञा दी। उनका चेहरा क्रोध से लाल हो गया। भयभीत शिबू कक्षा से बाहर भागने लगा। लेकिन शिक्षक ने उस पर प्रहार कर दिया। शिबू ने तुरन्त सिर झुका लिया। सुबीर सेन ठोकर खाकर गिर पड़े।

हँसी से कक्षा का सन्नाटा टूट गया। शिक्षक खड़े हो गए, उनकी आँखें लाल हो रही थीं।

नरेन की ओर बढ़ते हुए, उन्होंने उसके सिर पर डण्डा से प्रहार किया। उन्होंने क्रोध में कहा,''अब देखता हूँ कि तुम मुझ पर कैसे हँसते हो, ढीठ बन्दर !' ''अपने अशिष्ट

व्यवहार के लिए तुरन्त क्षमा माँगो।''

''नहीं, मैं नहीं मागूँगा ! मैंने कुछ भी गलत नहीं किया,'' नरेन बोला।

क्रोधित होकर, सुबीर सर चिल्लाए, ''मैं तुम्हें सबक सिखाऊँगा, जिसे तुम कभी नहीं भूलोगे,'' और नरेन को कानों से पकड़कर, उन्होंने उसे उठा लिया। कान की त्वचा फट गई और नरेन फूट-फूटकर रोने लगा। ''मुझे मारने वाले तुम कौन हो?'' वह चिल्लाया,'' ''यहाँ तक कि मेरे माता-पिता भी मुझ पर हाथ नहीं उठाते।''

''यहाँ क्या चल रहा है?'' प्रधानाचार्य सुबीर सर को फटकारते हुए कक्षा में चले आए। सुबीर सर ने तुरन्त अपने बन्दी छात्र को रिहा कर दिया। नरेन की गर्दन से खून की एक पतली धारा बह निकली और बेसुध होकर रोते हुए उसने अपनी पुस्तकें एकत्र कीं। 'मैं जा रहा हूँ सर,'' उसने प्रधानाचार्य से कहा, ''और मैं इस विद्यालय में कभी वापस नहीं आऊँगा। सुबीर सर हमें हमेशा पीटते हैं ... पूरी कक्षा उनसे डरती है ... बच्चों को पढ़ाने का यह तरीका नहीं है।''

प्रधानाचार्य घुटनों के बल नीचे आए और अपना रुमाल निकालकर नरेन के कान से खून पोंछ दिया। ''मुझे बहुत खेद है, मेरे बच्चे,'' उन्होंने धीरे से कहा। ''यह वास्तव में मेरी गलती है।'' क्योंकि मुझे जितनी बार कक्षाओं का निरीक्षण करना चाहिए, उतनी बार मैं नहीं करता। अगर तुम चले गए, तो यह विद्यालय अपने सबसे अच्छे छात्रों में से एक छात्र को खो देगा।''

प्रधानाचार्य का उदास चेहरा देखकर नरेन ने अपने आँसुओं पर नियन्त्रण पाया और बिना एक भी शब्द कहे, अपनी मेज पर लौट आया। ''धन्यवाद,'' प्रधानाचार्य मुस्कुराए और सुबीर सेन की ओर देखते हुए कठोरता से कहा, ''कृपया, मेरे साथ आइए ... मुझे आपसे कुछ आवश्यक बात करनी है।''

विद्यालय के बाद, हरि और शिबू भुवनेश्वरी देवी को पूरी कहानी सुनाने के लिए नरेन के साथ घर गए। नरेन के कान की जाँच करते हुए, उन्होंने क्रोध में कहा, ''वह शिक्षक एक राक्षस है ! हम तुम्हारा दूसरे विद्यालय में नाम लिखा देंगे।''

लेकिन नरेन ने सिर हिलाया, ''नहीं, माँ। प्रधानाचार्य ने सब कुछ ठीक कर दिया है।''

''हाँ, चाची,'' शिबू और हरि ने एक सुर में कहा सुबीर सर नरेन को एक सबक सिखाना चाहते थे, लेकिन इसने उनको ही सिखा दिया !'' खुशी से उछलते हुए, उन्होंने कहा, 'सुबीर सेन अब हमें सबक नहीं सिखाएँगे ! हिप हिप हुर्रे !''

* * *

नैतिक बनो। बहादुर बनो। एक बड़े हृदय वाला मनुष्य बनो। पूर्णरूप से नैतिक, निराशा की स्थिति में भी बहादुर बनो। मेरे बच्चो, तुम्हारे लिए कोई धर्म नहीं, बल्कि नैतिकता और बहादुरी है। कोई कायरता नहीं, कोई पाप नहीं, कोई अपराध नहीं, कोई कमजोरी नहीं, बाकी सब अपने आप आ जाएगा। – स्वामी विवेकानन्द

पृष्ठ ५०३ का शेष भाग

और इस प्रकार के द्वार सदैव खुले रहते हैं। व्यक्तित्व की आधारभूत शक्तियाँ इन द्वारों में व्यर्थ ही बहती रहती हैं। जो आन्तरिक ऊर्जा केवल प्रयोजनों में व्यय होनी थी, वह उद्विग्न मन यों ही मथ-मथकर अकारण बहता रहता है। ऐसा व्यक्ति एकीकृत नहीं रह जाता। यही स्थिति मानसिक अवरोध या तनाव अथवा मधुमेह को जन्म देती है।

इसीलिए व्यक्तित्व की साधना का अर्थ है – मन की साधना। जिसने मन को साध लिया, उसका व्यक्तित्व सध गया। किन्तु मात्र जागृति की स्थिति में अनुभव में आगे आने वाले भाव ही मन की पहचान नहीं है। जागृति, निद्रा, स्वप्न सभी स्थितियों में मन सक्रिय रहता है। चेतन मन से की जाने वाली साधना का प्रधान क्षेत्र अचेतन मन ही है। आध्यात्मिक साधनाओं की विशेषता का रहस्य यही है कि वे अचेतन मन को शुद्ध करती हैं। वहीं पर उत्कृष्टता के अंकुर उगा देती हैं। तन, चेतन में उनका विकास स्पष्ट देखा जा सकता है। स्वयं मन को ही ऊँचा उठाना, सर्वश्रेष्ठ मानसिक संकल्प है। मन:स्तर ही व्यक्तित्व है। मुक्त मन:स्थिति मुक्त व्यक्तित्व की विशुद्ध परिचायक है। ○○○

विनोबा-जयन्ती विशेष

भूदान-यज्ञ : एक अनूठा आरोहण

कंचन दीदी

ब्रह्मविद्या मन्दिर, पवनार, महाराष्ट्र

भूदान के बारे में जब मैं सोचती हूँ, तो बहुत अचम्भा होता है। वह सारा दर्शन व कार्य इतना विलक्षण, इतना अनूठा, मूलभूत और अभिनव लगता है कि उसके लिए अद्‌भुत, अनुपम जैसे शब्द भी बौने लगते हैं।

भूदान में लाखों एकड़ जमीन मिली। आज भी वह इतना असम्भव-सा लगता है कि सहसा लोगों को विश्वास नहीं होता। तब कैसा वातावरण पूरे देश में बना था ! कैसे लोग दूर-दूर से दौड़कर अपनी जमीनें देने आते थे ! वह सब कल्पना करना भी कठिन है। विनोबाजी की बात सुनकर तो लोग दान देते ही थे, लेकिन कार्यकर्ताओं से जानकर, गाँव में चर्चा सुनकर, अखबारों में पढ़कर भी लोग दान देते थे।

विनोबाजी ने ईश्वर के इशारे से भूदान का काम उठाया था। ईश्वर ने मानो उन्हें अपना साधन बनाया था, तो ईश्वर की शक्ति उससे जुड़ी थी। वे कई बार कहते थे कि ''जिधर देखो उधर, ईश्वर का रूप दीखता है। वही सबको नचा रहा है। मुझे भी वही सुझा रहा है। ईश्वर अगर मुझे माँगने की प्रेरणा दे रहा है, तो लोगों को देने की प्रेरणा नहीं देगा? इसी श्रद्धा के कारण दान मिलता है। हम माँगते हैं, तो वे 'ना' नहीं कहते। भक्त माँगेगा, तो ईश्वर अस्वीकार कैसे करेगा?''

कभी उन्हें कम जमीन मिलती, तो कभी अधिक। लेकिन उसका कोई दुख-सुख उन्हें नहीं होता था। कम मिलता, तो भी ईश्वर का प्रसाद मानते थे। वे जमींदारों से कहते कि मुझे मात्र जमीन से संतोष नहीं, मुझे आपका जीवन भी चाहिए। उसे भी सेवा में लगा दें। सर्वस्व दान करके फकीर बन जाएँ।

विनोबाजी बच्चों को भी अपना वकील बना लेते थे। अक्सर पड़ाव पर पहुँचने पर बच्चे बाबा को घेर लेते थे। फिर बाबा से उनकी मजेदार वार्ता होती। बच्चों से वे पूछते – ''जानते हो, हम किस काम के लिये यहाँ आये हैं?'' बच्चे कहते – ''जी हाँ, आप जमीन माँगने आए हैं।''

बाबा पूछते – ''जमीन लेकर मैं क्या करूँगा?'' कई बच्चे एक साथ बोलते – ''गरीबों को बाँटेंगे। जिनके पास जमीन नहीं है, उन्हें देंगे।''

बाबा आगे पूछते – ''क्या तुम लोगों को यह काम पसन्द है?'' उछलते-कूदते हाथ ऊपर लहराकर वे चिल्लाते 'जी हाँ।' फिर बाबा असली मुद्दे पर आते – ''तो फिर तुम सब अपने घर जाओ और अपने माँ-पिता से कहो कि बाबा गरीबों के लिए जमीन माँगता है, उसे जमीन जरूर देनी चाहिए। अगर तुम्हारे माँ-पिता कहें कि यह जमीन तुम्हारे लिए ही है, तो कहना कि केवल हमारे लिए ही नहीं, सबके लिए है। हम सब बड़े होकर उस पर श्रम करेंगे और साथ खायेंगे।''

यह सुनकर सब बच्चे घर की ओर दौड़ पड़ते और अपने पिताओं को लाकर दान दिलवाते। ऐसी घटनाएँ कितने स्थानों पर देखने को मिलतीं।

सबसे आश्चर्य की बात है कि बाबा गरीबों से भी दान लेते। सुदामा के मुट्ठीभर तंदुल और शबरी के बेर की कितनी कीमत होती? धेला भर भी नहीं। लेकिन युगों-युगों से उसके गीत गाये जाते हैं। वे जनमानस में अमर हो गये। भूदानयज्ञ में भी अनेक सुदामाओं ने तंदुल दिये, अनेक शबरियों ने बेर दिये। प्राय: ऐसी घटनाएँ घटतीं, जब कोई-न-कोई गरीब दान देता। वह कोई बहुत बड़ा दान नहीं होता था, लेकिन तंदुल व बेर की पवित्रता अवश्य होती।

तेलंगाना की बात है। एक गाँव में पेड़ के नीचे बाबा आसन लगाकर ध्यानस्थ बैठे थे। आसपास के गाँवों से हजारों लोग समवेत हो गये। जब विनोबा जी ने जमीन की माँग की, तब एक भाई ने कहा – ''क्या माँगने से भी कोई जमीन देता है?'' विनोबाजी ने सामने बैठे एक भाई को खड़ा करके पूछा कि 'तुम्हारे पास कितनी जमीन है?' 'मात्र एक एकड़!' 'घर में कितने लोग हैं?' 'दस लोग।' 'अपने भूमिहीन पड़ोसी को कुछ दोगे?' वह सुनकर बेचारा असमंजस में पड़ गया। अपने ही परिवार का गुजारा मजदूरी से चलता था। एक एकड़ में से क्या दे? अन्त में एक गुंठा दिया। फिर बूँद-बूँद बरसना आरम्भ हुआ। अत्यन्त गरीब साठ लोगों ने मिलकर तीस एकड़ दान दिया। इतना ही नहीं, जिसने प्रश्न पूछा था, उसने भी दिया।

इधर गाँव भर में यह सूचना फैल गयी कि भूदानयज्ञ में उनके परिवार की भी आहुति पड़ी है, तो गाँव की सब बहनें आरती का थाल सजाकर ऐसा पुण्यकार्य करवाने वाले उस बाबा के दर्शन के लिए आयीं। तब तक बाबा सो चुके थे। तो वे चुपचाप आरती उतार कर प्रणाम करके चली गयीं।

कई लोग बाबा के सामने यह प्रश्न उठाते कि आप गरीबों से दान क्यों लेते हैं, उन्हें तो देना चाहिए। बाबा कहते कि **गरीबों के दान में क्रान्ति का बीज है। गरीब अगर मालकियत छोड़े, तो अमीरी स्वतः समाप्त हो जायेगी। यह एक यज्ञ है, इसमें गरीब-अमीर सबको अपनी आहुति देनी चाहिए। हर मनुष्य के पास कुछ-न-कुछ है। किसी के पास जमीन है, किसी के पास सम्पत्ति है, किसी के पास बुद्धि है, किसी के पास श्रम है, वह उसका एक भाग समाज को दे।** कई लोगों ने जमीन के साथ हल, बीज, गाय, बकरी, झोपड़ी आदि भी दिये। इस प्रकार विनोबाजी ने पूरे समाज को धर्म-विचार सिखाया, देश में देवत्व का विकास किया।

जब भूदान की बात होती है, तब अधिकतर यही देखा जाता है कि कितनी जमीन मिली, कितनी बँटी, कितनी का दुरुपयोग हुआ। लेकिन जब तक हम इसे केवल बाह्य-स्थूल दृष्टि से देखेंगे, गरीबों को थोड़ी राहत पहुँचाने वाला मानेंगे, सामाजिक-आर्थिक काम ही मानेंगे, तब तक इसे ठीक से समझ नहीं सकेंगे। क्योंकि यह मूलतः आध्यात्मिक कार्य था और अध्यात्म में शाश्वतता होती है। इसे गहराई से समझने के लिये हमें अन्तर्विश्व के द्वार खोलने होंगे। ऊपर-ऊपर से देखने पर वह नहीं समझेगा। विनोबाजी के लिए तो भूदान आत्मदर्शन का ही कार्यक्रम था। अतः उसके लिए अनुभवों को उन्होंने एक प्रकार का साक्षात्कार माना।



हर मनुष्य के हृदय में कितनी शक्ति भरी पड़ी है, इसका उसे स्वयं ही पता नहीं होता। लोगों के हृदय में अनन्त प्रेम, करुणा, दया आदि भरी है, यह वे स्वयं नहीं जानते। लेकिन एक आत्मज्ञानी महापुरुष का संस्पर्श मिला, तो वह सब प्रकट होने लगी। उनकी प्रबल ईश्वरनिष्ठा के कारण ही सबके भीतर के सोए भगवान जाग उठे।

भूदान के प्रारम्भ के दिनों की बात है। अनेक विचारवान लोगों की तरह गुजरात के श्री नारायण भाई देसाई भी भूदान की ओर आकृष्ट हुए। वे उसके बारे में विनोबाजी से चर्चा करने के लिए गए। उन्होंने उनके सामने अपनी एक शंका रखी – 'आपको सबमें ईश्वर दीखता है, इसलिए लोग आपको दान देते हैं। हममें वैसी ईश्वरनिष्ठा नहीं है, तो हम किस आधार से लोगों से माँगे?' विनोबाजी ने कहा – ''यह तो तुम मानते हो न, कि सबमें भलाई-अच्छाई भरी है !'' नारायण भाई ने तुरन्त कहा – ''यह भला क्यों नहीं मानूँगा। यही तो अहिंसा की नींव है।'' बाबा ने कहा – ''बस यही विश्वास रखो, काम अवश्य होगा।'' उसके बाद नारायणभाई का समाधान हो गया और उन्होंने गुजरात में भूदान का दायित्व लिया। रोज ही अच्छाई-भलाई के दर्शन होने लगे। विनोबाजी की तो प्रारम्भ से ही यह मूलभूत श्रद्धा थी कि प्रत्येक मनुष्य में भलाई भरी है। ऊपर से भले बुराई दीखती है, लेकिन गहराई में भलाई ही है। अन्ततः ऋजु-कुटिल, अच्छा-बुरा वेश लेकर ईश्वर ही लीला कर रहे हैं। ऊपर का आवरण हटा दें, तो भलाई ही भलाई दिखेगी।

भूदान को विनोबाजी आन्दोलन नहीं, आरोहण कहते थे। हम भले ही साधारण सरल भाषा में आन्दोलन कह लें, लेकिन वह आरोहण ही था। जैसे पहाड़ पर चढ़ते समय एक-एक चोटी चढ़ते जाते हैं, तब नया क्षितिज खुलता जाता है। विनोबाजी के सामने भी एक-एक पर्व खुलता गया, नया दर्शन होता गया। प्रारम्भ में जो भी दान मिलता था, वह उन्होंने लिया। लेकिन बाद में छठवाँ भाग माँगने लगे। अन्त में स्वामित्व-त्याग तक पहुँचे। जैसे इंजीनियर पहाड़ पर चढ़ने के लिए सीधी दीवार नहीं बनाता। धीरे-धीरे ऊपर ले जाता है। वे वैसे ही एक-एक पग आगे बढ़ाते हुये मानवता को शिखर पर ले गए। मुझे तो आज

भी उनकी पदचाप अव्यक्त में से गूँजती लगती है, मानो वे आवाहन कर रहे हैं कि आओ, आगे बढ़ो। शिखर की ओर बढ़ते रहो। मानवता को नई ऊँचाइयों पर पहुँचाओ। ...

भूदान के कई सन्देश आज के लिए, मानव धर्म की स्थापना के लिए, भावी पीढ़ी के लिए, आगामी युग के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण हैं –

१. साम्य की स्थापना – आज हम सारे समाज को देखें, तो चारों ओर विषमता ही विषमता दीखती है। सब समस्याओं के मूल में यही है। ऊँच-नीच, धनी-गरीब, स्त्री-पुरुष, शिक्षित-अशिक्षित, विकसित-अविकसित आदि जाने कितने प्रकार की विषमता है। अत: हर क्षेत्र में समता की स्थापना आवश्यक है। विनोबाजी ने साम्य को इस युग का ब्रह्म कहा। गीता को नाम दिया – 'साम्ययोग'। साम्यसूत्र बनाया – अभिधेयं परं साम्यम्। हमारे जीवन का चिन्तनसर्वस्व, कृति-उक्ति, लक्ष्य का विषय साम्य हो। उसके पहले कदम के रूप में भूमिहीनों को जमीन दिलाने का कार्यक्रम उठाया। भूदान में मिलने वाला हर दान उसी पर लगी हुई मुहर है। वे भूदान का विचार समझाते हुए स्पष्ट कहते थे कि जमीन दया करके नहीं देनी है, भाई मानकर उसका अधिकार देना है।

आज भी अगर हम सारे समाज को अपना मानें, भाई मानकर व्यवहार करें, तो बहुत-सी समस्याओं का समाधान स्वयं ही हो जाएगा।

२. सबै भूमि गोपाल की – भूदान के समय में यह नारा बहुत लगाया जाता था। विनोबाजी लोगों को यही समझाते कि हवा, पानी, सूरज के प्रकाश के समान भूमि भी ईश्वर की देन है। उस पर किसी का स्वामित्व, एकाधिकार नहीं हो सकता, न किसी व्यक्ति का, न किसी देश का। इस विचार को समझाने के लिए ही वे अस्सी हजार किलो मीटर चले।

इस विचार को आज सम्पूर्ण विश्व में प्रचार-प्रसार की अधिक आवश्यकता है। आज जब विज्ञान ने हमें एक आंगन में लाकर खड़ा किया है, तब भाषा, धर्म, जाति, प्रान्त आदि के नाम पर कैसी संकुचित मानसिकता चली आ रही है, यह सब देखकर आश्चर्य होता है ! संसार की सारी समस्याओं के जड़ में यही विचार है कि हर व्यक्ति, समाज, राष्ट्र को अपने लिए अधिक-से अधिक चाहिए। फिर उसके लिए युद्ध होते हैं। युक्रेन-रशिया, इजराइल फिलिस्तीन आदि सब युद्धों के मूल में यही भाव है। जबकि भूदान ने इसका उलटा सिखाया, सबके कल्याण की बात की, स्वामित्व का त्याग करना सिखाया। अगर हम चाहते हैं कि कहीं युद्ध न हो, तो यह विचार सारे जगत् में गुंजित कर देना होगा। यही 'जय-जगत्' है।

३. प्रकृति के साथ जीने का संदेश – पश्चिम की विचारधारा ने मानव को यह सिखाया है कि हमको प्रकृति पर विजय पाना है, उसका स्वामी बनना है, अत्यन्त भोग भोगना है। उसके कारण पर्यावरण को अपूरणीय क्षति पहुँची है। उसकी इतनी हानि हुई है कि हम सर्वनाश के कगार पर पहुँच गए हैं। जबकि भूदान सिखाता है कि यह सारी सृष्टि हमारा व्यापक परिवार है। इसकी सेवा करके हमें प्रसाद पाना है। विनोबाजी ने एक सूत्र बनाया है – त२+भ = जीवन। जब दो भाग त्याग होगा, तब एक भाग भोगने का अधिकार होगा। यही भूदान का मूल सन्देश है। इसकी ओर मानव का ध्यान जाये और वैसा करे, तभी सारी सृष्टि को बचा सकेंगे। जपुजी में भी कहा है – पवण गुरु, पाणी पिता, माता धरती महतु – हवा गुरु, पानी पिता, धरती माँ है। यदि यह समझ लें, तो उसे कोई भी हानि नहीं पहुँचा सकता।

४. विश्वशान्ति के बीज – विनोबाजी ने समता, न्याय, करुणा, भूतदया का एक वातावरण-निर्माण किया था, जिससे समाज-जीवन की समस्याओं का समाधान स्वयमेव हो जायेगा। वे मानते थे कि यदि हम अहिंसा से, शान्ति से अपनी समस्याओं का समाधान कर लें, तो संसार में कोई समस्या ही नहीं रहेगी। भूदान-ग्रामदान का विचार प्रकाश की मशाल है, जिससे अन्धकार दूर होगा।

भूदान का यही सन्देश है कि हम सब एक हैं। बाकी बाहरी भिन्नताएँ कृत्रिम हैं। लेकिन वे मानव को मानव से पृथक् करती हैं। बिनोबाजी की यात्रा कश्मीर में चल रही थी। सेना के अधिकारी उन्हें सीमा दिखाने ले गए और बताने लगे कि यह हमारी चौकी है और सामने दुश्मन की। विनोबाजी जी ने तुरन्त कहा – 'दुश्मन नहीं, पड़ोसी कहो।' यह भूदान सिखाता है कि हम किसी को दुश्मन न मानकर अपना साथी मानें, एक-दूसरे के सहायक बनें। इसी में विश्व-शान्ति के बीज निहित हैं।

भविष्य के ऐसे न जाने कितने ही सन्देश, जिसमें निहित

हैं, उस भूदान की कई अनूठी विशेषताएँ भी हैं –

१. पदयात्रा का सुलभ साधन – विनोबाजी ने विचार को लोगों तक पहुँचाने का साधन पदयात्रा को बनाया। बारिश में भीगते, ठंड में ठिठुरते, गर्मी में झुलसते हुए पदयात्रा किये जा रहे हैं। कोई भी उनका मार्ग नहीं रोक सका। बिहार में बाढ़ में भी २०० नौकाओं पर लोग सुनने के लिए आये। महाराष्ट्र के अक्राणी महाल में उनकी यात्रा चल रही थी। वहाँ इतनी बारिश थी कि अगले पड़ाव तक जाने के लिए अठारह बार नदी के प्रवाह में से जाना पड़ता। वहाँ के कार्यकर्ता और अधिकारियों ने विनोबाजी से यात्रा स्थगित करने का अनुरोध किया। लेकिन विनोबाजी ने कहा कि 'मैंने जाना निश्चित किया है। मेरी यात्रा की व्यवस्था का भार आप पर नहीं, वह तो ईश्वर पर है। आप निश्चिन्त रहें।' और यात्रा हुई। मार्ग में इतनी फिसलन थी कि चप्पल उतारकर चलना पड़ा। लेकिन वह पहला विकासखण्ड था, जो दान में मिला! भूदान में ऐसी हजारों घटनाएँ घटीं, जब भगवान ने भक्त की भले थोड़ी परीक्षा ली, लेकिन मार्ग भी प्रशस्त किया।

इस प्रकार अनेक कठिनाईयों के साथ सतत चौदह साल पदयात्रा चली और जन-जन तक संदेश पहुँचा। उन्होंने भूदान द्वारा स्वयं तपस्या की और साथियों से भी करवायी। त्याग-तपस्या की मानो होड़ ही लग गयी थी। स्थान-स्थान पर पद-यात्राएँ होने लगीं। अपनी क्षमता के अनुसार कोई प्रान्त स्तर की, कोई जिला, तहसील स्तर की पदयात्रा करता था। सर्वोदय सम्मेलन प्रतिवर्ष होता था, वहाँ भी कार्यकर्ता टोलियों में पदयात्रा करते हुए, विचार समझाते हुए पहुँचते।

२. दिलों को जोड़ने का काम – विनोबाजी कहते थे कि 'मेरे जीवन के सभी कार्य दिलों को जोड़ने के एकमात्र उद्देश्य से प्रेरित हैं।' भूदान के समय तो उसका विशेष ही दर्शन होता था। उन्होंने अमीर-गरीब, छोटा-बड़ा आदि को तो जोड़ा ही, प्रान्त, भाषा, धर्म आदि को भी जोड़ा। किसी भी प्रान्त में जाने के पहले वे वहाँ की भाषा सीख लेते थे और उसके धर्मग्रन्थ का अध्ययन करते थे। बिहार, उत्तरप्रदेश में रामचरितमानस-विनयपत्रिका, उड़ीसा में जगन्नाथदास का भागवत, पंजाब में जपुजी, तमिलनाडु में आंडाल-तिरुवल्लुवर, आन्ध्र में पोतना का भागवत, कर्नाटक में बसवेश्वर, पुरन्दरदास, असम में नामघोषा-कीर्तनघोषा आदि का अध्ययन चलता था। साथी भी उसके अध्ययन में लग जाते। उस प्रान्त में उनके धर्मग्रन्थों का उदाहरण और भाष्य होता, जो लोगों के दिलों को स्पर्श करता।

जपुजी, नामघोषा जैसे कुछ ग्रन्थों का सार निकालकर नागरी में छपवाया, जिससे भारतभर में प्रचार हुआ। विनोबाजी के सभी चयनित सारग्रन्थ अध्यात्म का अनमोल खजाना हैं। वे इतने परिष्कृत और सुन्दर बने कि मूल से भी अधिक उपयोगी व व्यापक बने।

३. निष्काम सेवकों की जमात – भूदान की एक बहुत बड़ी उपलब्धि रही कि निष्काम सेवकों का दल निर्मित हुआ। इन सेवकों का ऐश्वर्य था, 'अभाव का वैभव'। इस काम के लिये विनोबाजी को सर्वस्व त्यागी यति की ही आवश्यकता थी, जो सतत विचार के प्रचारक परिव्राजक बनें। आश्चर्य है कि उन्हें सैकड़ों कार्यकर्ता भी मिले, जिन्हें सुख-सुविधा, परिवार, कैरियर किसी की भी चिन्ता नहीं थी। बाबा इसे 'पागलों की जमात' कहते। इन्हें कभी सम्मान मिलता, कभी अपमान। कभी खाने को मिलता, कभी भूखे। सभी कार्यकर्ताओं का एक ही आधार था – 'हारे को हरिनाम'।

सेवकों के लिए बाबा ने एक सूत्र दिया है – च२+स = क्रान्ति। दो भाग चित्तशुद्धि, एक भाग समाज-परिवर्तन, तब क्रान्ति होगी। यानी समाज-परिवर्तन तभी सफल होगा, जब उससे दुगुनी चित्तशुद्धि होगी।

उन कार्यकर्ताओं के जीवन की कहानियाँ सुनकर हम दाँतों तले उंगली दबा लेंगे। उनकी कठिनाइयों का पार नहीं था, फिर भी उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी। एक बार मैंने एक कार्यकर्ता से पूछा कि इतने कष्टों में कभी यह नहीं लगता था कि यह कैसा जीवन हो गया है? उन्होंने तुरन्त कहा – ''नहीं, बिल्कुल नहीं। बल्कि इससे अधिक सुन्दर जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते।''

भूदानयज्ञ की नींव में ऐसे न जाने कितने सेवकों का जीवन पड़ा है। उनके त्याग-तपस्या की कहानियाँ किसी को मालूम भी नहीं हैं। मुझे तो उनका भाग्य उन उपनिषदों के ऋषियों जैसा लगता है, जिन्हें कोई नहीं जानता।

इतने साल बीत जाने के बाद भी मुझे स्पष्ट दीखता है कि इस विचार में भविष्य की वैश्विक क्रान्ति के बीज छिपे हैं। केवल हमें इससे अपनी सद्भावनाओं और सद्विचारों को खाद-पानी देते रहना है। तब यह विचार आगामी युग का प्रकाशस्तम्भ बनेगा। ○○○

जब प्रतिज्ञा और कर्तव्य टकराएँ

स्वामी गुणदानन्द, रामकृष्ण मठ, नागपुर

द्रोणाचार्य की मृत्यु के बाद कर्ण कौरव सेना का सेनापति बना। उसने युधिष्ठिर और सहदेव को परास्त कर घायल कर दिया। अपमानित होकर युधिष्ठिर युद्धभूमि छोड़कर अपने



शिविर में चले गए। यह जानकर अर्जुन युधिष्ठिर के लिए चिन्तित हुआ। उसने पाण्डव सेना का दायित्व भीम को सौंपा और युधिष्ठिर के पास गया। उसके वहाँ पहुँचने पर युधिष्ठिर को लगा कि अर्जुन ने कर्ण का वध कर दिया है। उन्होंने उससे पूरी बात जाननी चाही। जब अर्जुन ने कहा कि वह कर्ण का वध नहीं कर सका, तो युधिष्ठिर ने नाराज होकर अर्जुन को कठोर शब्दों में डाँटते हुए कहा, 'तुम कर्ण को पराजित नहीं कर सके और भय से सेना का भार भीम को सौंपकर यहाँ चले आए हो। तुमने वचन दिया था कि कर्ण का वध करोगे, पर उसे पूरा नहीं किया। तुम्हारा रथ विश्वकर्मा ने बनाया है, उस पर हनुमान का ध्वज है, तुम्हारे पास गाण्डीव धनुष है और स्वयं श्रीकृष्ण तुम्हारे सारथी हैं। फिर भी तुम कर्ण के भय से भाग आए! अपना गाण्डीव कृष्ण या किसी और को दे दो। तुम इसके योग्य नहीं हो। धिक्कार है तुम्हारी वीरता पर! धिक्कार है तुम्हारे गाण्डीव पर!'

युधिष्ठिर के कठोर वचनों से अर्जुन क्रोधित होकर तलवार निकालने लगा। यह देखकर श्रीकृष्ण ने पूछा, 'तुम यह क्या कर रहे हो? यहाँ कोई शत्रु नहीं है, फिर तलवार क्यों निकाल रहे हो?' अर्जुन ने कहा, 'मैंने प्रतिज्ञा ली है कि जो मुझसे गाण्डीव त्यागने को कहेगा, उसका मैं वध करूँगा। अत: अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति हेतु मुझे युधिष्ठिर का वध करना ही होगा।' इस पर श्रीकृष्ण ने कहा, 'अर्जुन, धिक्कार है तुम पर! धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानने वाला ऐसा आचरण नहीं करता। श्रेष्ठ जन जिस प्रकार सत्य का पालन करते हैं, उसकी सूक्ष्मता को समझना आसान नहीं है। ऐसे अवसर भी आते हैं, जब असत्य बोलने पर भी पाप नहीं लगता – जैसे किसी के प्राण बचाने के लिए, विनाश से रक्षा करने के लिए या किसी के कल्याण के लिए। ऐसे में असत्य कहना अधर्म नहीं होता। कभी-कभी अप्रिय सत्य बोलने पर भी पाप लग जाता है।'

तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने कौशिक नामक एक व्यक्ति की कथा सुनाई, जो विद्वान नहीं था, पर सत्यवादी था। एक दिन जब वह बैठा हुआ था, तो कुछ लोग उसके सामने से भागते हुए गुजरे। थोड़ी देर बाद डाकुओं का एक दल वहाँ आया। उन्होंने कौशिक से पूछा कि वे लोग किस दिशा में गए हैं। सत्यवादी कौशिक ने उन्हें सही दिशा बता दी। डाकू उनके पीछे गए और अन्तत: उन लोगों की हत्या कर दी। श्रीकृष्ण ने कहा कि इस प्रकार सत्य बोलने पर भी कौशिक को पुण्य नहीं मिला, बल्कि वह पाप का भागी बना। श्रीकृष्ण ने कहा कि उस परिस्थिति में कौशिक को मौन रहना चाहिए था और यदि उसका मौन ही संकेत बन जाता, तो उसे डाकुओं को भ्रमित कर देना चाहिए था।

इसके बाद श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि युधिष्ठिर को कर्ण ने अपमानित किया था। युद्ध भूमि छोड़ने के बाद भी कर्ण ने उस पर आक्रमण किया। वह तुम्हें कर्ण-वध के लिए प्रेरित करना चाहता था क्योंकि उसे तुम्हारी क्षमता पर पूर्ण विश्वास था। श्रीकृष्ण ने यह भी स्पष्ट किया कि युधिष्ठिर श्रेष्ठ और पूजनीय हैं, अत: उनका वध करना तुम्हारे लिए सर्वथा अनुचित होगा। यह अहिंसा के सिद्धान्त का घोर उल्लंघन है। अर्जुन ने श्रीकृष्ण से पूछा कि उसे क्या करना चाहिए क्योंकि एक ओर युधिष्ठिर का वध करना अधर्म था और दूसरी ओर अपनी प्रतिज्ञा निभाना भी आवश्यक था।

श्रीकृष्ण ने कहा – 'जब किसी महान और सम्माननीय

व्यक्ति का अपमान किया जाता है, तो वह मानो मर ही जाता है। अथर्ववेद में कहा गया है कि किसी श्रेष्ठ पुरुष का अपमान करना उसका वध करने के समान है। अत: इस शास्त्रीय सिद्धान्त के आधार पर तुम युधिष्ठिर का अपमान करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। इसके बाद उससे क्षमा माँग लेना। वह धर्मात्मा और उदार है, तुम्हें क्षमा कर देगा।' श्रीकृष्ण के निर्देशानुसार अर्जुन ने युधिष्ठिर को कठोर शब्दों में उलाहना देना शुरू किया – 'तुम युद्धभूमि छोड़कर यहाँ आकर बैठे हो और अपने साथियों पर निर्भर हो। वीर पराक्रमी भीम आपसे कितने भिन्न हैं! आप उनकी तरह नहीं हो, इसलिए मुझ पर दोष लगाने के योग्य भी नहीं हो। आपको जुए की बुरी लत है। आपकी वजह से हमने अपना राज्य खोया और अनेक कष्ट सहे।' बाद में अर्जुन अपने अनुचित व्यवहार के लिए पश्चात्ताप करने लगा। उसने फिर से अपनी तलवार निकाल ली। यह देखकर श्रीकृष्ण ने आश्चर्य से पूछा, 'अब क्या बात है?' अर्जुन ने कहा कि मैं आत्महत्या करना चाहता हूँ, क्योंकि मैंने अपने पूजनीय भाई के प्रति अनुचित व्यवहार किया है। तब श्रीकृष्ण ने उसे रोकते हुए कहा – 'सोचो, यदि तुम युधिष्ठिर का वध कर देते, तो कितना अनुचित होता। अधर्म से बचने के लिए ही तुमने कठोर वचन कहे। फिर अब इतना शोक क्यों कर रहे हो? तुम आत्महत्या करना चाहते हो, पर यह बुद्धिमानी नहीं है। यदि तुम आत्महत्या करोगे, तो तुम्हें उससे भी अधिक पाप लगेगा, जितना भाई की हत्या से लगता और तुम्हें भयंकर दु:ख भोगना पड़ेगा। आत्म-प्रशंसा भी आत्महत्या के समान मानी गई है। इसलिए आत्म-प्रशंसा कर अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो।' तब अर्जुन ने आत्म-प्रशंसा करते हुए कहा – 'पिनाकधारी शिव को छोड़कर धनुर्विद्या में मेरा कोई सामना नहीं कर सकता। मैं अकेले ही समस्त संसार को नष्ट कर सकता हूँ। मैंने पहले भी सभी राजाओं को पराजित कर उन्हें आपके अधीन किया था, हे युधिष्ठिर! मैं कौरवों की आधी सेना का विनाश कर चुका हूँ।'

श्रीकृष्ण की कृपा से प्रतिज्ञा-भंग, युधिष्ठिर-वध और आत्महत्या – इन तीनों पापों से बचकर अर्जुन ने युधिष्ठिर से क्षमा माँगी और वह पुन: युद्धभूमि में जाने के लिए तैयार हुआ। उसने युधिष्ठिर से कहा – 'मेरा जीवन आपको प्रसन्न करने के लिए ही है। इस बीच, युधिष्ठिर अत्यन्त खिन्न हो गए और स्वयं को तुच्छ समझने लगे। उन्होंने कहा – 'मैं पापी हूँ और तुम सबको बहुत कष्ट दिया है। मैं मृत्यु के योग्य हूँ। भीम ही राज्य करने के योग्य हैं, मैं नहीं। मैं वन को चला जाऊँगा।' युधिष्ठिर जब अपने शय्या से उठकर जाने लगे, तब श्रीकृष्ण ने उनसे विनती करते हुए कहा – 'अर्जुन ने प्रतिज्ञा की थी कि जो उससे गाण्डीव त्यागने को कहेगा, उसे वह मार डालेगा। वह अपनी उस प्रतिज्ञा को तोड़ नहीं सकता था, इसलिए मेरी सलाह से उसने तुम्हारा अपमान करके अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। हमारे इस अपराध को क्षमा करें। तुम कर्ण के वध की इच्छा रखते हो, आज वह अवश्य मारा जाएगा और पृथ्वी उसका रक्त पिएगी। शान्त होकर युधिष्ठिर ने कहा – 'मैं और अर्जुन मोह में पड़ गए थे। हम दु:ख व विपत्ति के सागर में डूब जाते। आपने हमें बचा लिया। आप वह नौका हैं, जिसने हमें मोह रूपी सागर से पार पहुँचा दिया।'

यह प्रसंग केवल युद्ध की कथा नहीं है, बल्कि जीवन के गहन सत्य और व्यावहारिक बुद्धिमत्ता की शिक्षा देता है। युधिष्ठिर का क्रोध, अर्जुन की प्रतिज्ञा और श्रीकृष्ण की सूझबूझ – ये सब हमें सिखाते हैं कि जीवन में केवल नियमों का पालन ही पर्याप्त नहीं, बल्कि विवेक भी उतना ही आवश्यक है। क्रोध में लिया गया निर्णय विनाशकारी हो सकता है। युधिष्ठिर के कठोर शब्दों से अर्जुन उनके विरुद्ध खड़ा हो गया। घर हो या ऑफिस, क्रोध में बोले गए शब्द रिश्तों को तोड़ सकते हैं। इसलिए प्रतिक्रिया देने से पहले रुककर सोचना जरूरी है। मान लीजिए एक बच्चे ने अपने दोस्त को वचन दिया कि वह उसकी हर बात मानेगा। लेकिन यदि दोस्त उससे कोई गलत काम करने को कहे, तो उसका कर्तव्य है कि वह मना करे। अर्जुन की प्रतिज्ञा और कर्तव्य एक-दूसरे से टकराते हैं। किन्तु प्रतिज्ञा से बड़ा है कर्तव्य और मानवीयता। जब अर्जुन दुविधा में था, तब श्रीकृष्ण ने उसे सही मार्ग दिखाया। आज के परिवेश में माता-पिता, शिक्षक या अनुभवी लोग जीवन के 'कृष्ण' होते हैं। कठिन समय में उनकी सलाह हमें गलत निर्णय लेने से बचाती है। गलती के बाद अहंकार नहीं, विनम्रता जरूरी है। अर्जुन ने युधिष्ठिर से क्षमा माँगी और युधिष्ठिर ने भी उसे क्षमा किया। गलती होना स्वाभाविक है, लेकिन उसे स्वीकार करना और सुधारना ही सच्ची महानता है। ○○○

अच्छे संस्कार और अच्छी संस्कृति

अशोक पाण्डेय, भुवनेश्वर

अच्छे संस्कार और हमारी शाश्वत, सनातनी अच्छी संस्कृति पर अवलंबित है हमारा प्यारा भारतवर्ष। अच्छे संस्कार और अच्छी संस्कृति के जन्मदाता हैं – राम, कृष्ण, गौतम और गाँधी आदि; जिन्होंने इस कवियों-मुनियों के देश भारत में जन्म लेकर अपने अच्छे आचरण और अच्छे व्यवहार से भारतवर्ष को ही नहीं, अपितु पूरे विश्व को शान्ति, एकता, मैत्री तथा भाईचारे का अमर, पावन संदेश दिया। भारतवर्ष की शिक्षा-व्यवस्था गुरुकुल परम्परा से आरम्भ होकर आज सूचना तकनीकि के क्षेत्र में श्रेष्ठ है। औपचारिक, अनौपचारिक, तकनीकी तथा उच्च शिक्षा आदि आज के समय की मूलभूत आवश्यकता बन चुकी है। भारत सरकार की नई शिक्षा नीति-२०२० के अवलोकन से पता चलता है कि भारत की केन्द्र की लोक-कल्याणकारी सरकार पहली बार स्कूली शिक्षा, उच्च शिक्षा और तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाई है, शैक्षिक क्रान्ति लाई है। आवश्यकता है उसके सही अनुपालन की, शिक्षक, छात्र और अभिभावक को उसे अच्छी तरह से समझने और अपनाने की । एक नवजात शिशु को अपनी माँ से रोने और हँसने की पहली शिक्षा प्राप्त होती है। उसे अपने पिताजी, दादा-दादी, चाचा-चाची, भाई-बहन तथा संगी-साथी के सान्निध्य में रहकर अच्छे संस्कार और संस्कृति की शिक्षा मिलती है। उनके सान्निध्य में रहकर वह एक संस्कारी बालक बनता है और कुलगौरव कहलाता है। सच है कि मनुष्य जीवन में आजीवन सीखने को महत्त्व दिया गया है। हमारे वेद, पुराण, उपनिषद, रामायण, महाभारत, भागवत तथा गीता में आजीवन सीखने का उल्लेख है, अच्छे संस्कार और सनातनी संस्कृति को जानने, समझने और अपनाने आदि की बात बताई गई है।

आज शिक्षा के अनेक आयाम हैं, जैसे – अच्छे संस्कार और संस्कृति की शिक्षा, जीवनोपयोगी शिक्षा, प्रजातान्त्रिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा, नैतिक मूल्यों पर आधारित शिक्षा, शाश्वत जीवन मूल्यों पर आधारित शिक्षा, स्वान्त:सुखाय के साथ-साथ बहुजनहिताय की शिक्षा। इन सभी शिक्षाओं के मूल में संस्कार की शिक्षा आती है। हमारे ऋषि-मुनियों की सकारात्मक सोच है, यह संस्कार की शिक्षा। भारतीय संस्कार-परम्परा में कुल १६ प्रकार के संस्कार की बात कही गई है, जिनमें सबसे पहला है – गर्भाधान संस्कार, जो एक नवजात शिशु को अपनी माँ के गर्भ से प्राप्त होती है। दूसरा है – जातकर्म संस्कार, जिसमें बालक को वेदमंत्रोच्चारण द्वारा दीर्घजीवी तथा मेधावी होने का संस्कार दिया जाता है। नामकरण संस्कार – इसमें बालक का वैदिक आधार पर नामकरण किया जाता है। अन्नप्राशन संस्कार, जिसमें बच्चे को उसके जीवन में पहली बार सनातनी आधार पर भोजन कराया जाता है। चूड़ाकरण संस्कार, जिसकी महत्ता हमारे ऋषि-मुनियों ने बताई है। अक्षरारम्भ अथवा विद्यारम्भ संस्कार, जिसमें बच्चा लिखना सीखता है, भाषा के चारों कौशलों – बोलना, सुनना, पढ़ना और लिखना; सीखता है। प्रणामनिवेदन संस्कार, जिसमें बच्चा अपने माता-पिता, गुरु और ईश्वर आदि को प्रणाम करना सीखता है। जनेऊ संस्कार – यह संस्कार भारतीय वर्ण-व्यवस्था तथा सनातन धर्म पर आधारित होता है। कर्णबेधन संस्कार – यह संस्कार पूर्ण पुरुषत्व तथा स्त्रीत्व के लिए किया जाता है। वेदारम्भ संस्कार, जिसके प्राप्त करने से बालक वेदों का अध्ययन आरम्भ करने का अधिकारी बन जाता है। विवाह संस्कार, यह संस्कार सभी संस्कारों में श्रेष्ठ माना गया है, इसे गृहस्थ आश्रम कहा जाता है, जिसके माध्यम से चारों प्रकार के ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है और अन्तिम संस्कार है – अन्त्यकर्म संस्कार, जो मरणोपरान्त सम्पन्न होता है। हमारी भारतीय संस्कृति के मूल हैं ये सभी संस्कार। ये संस्कार ही हैं, जिसके कारण राजा दुष्यन्त तथा शकुन्तला के प्रतापी बालक भरत के नाम पर इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। इन्हीं संस्कारों पर अवलंबित है हमारी भारतीय संस्कृति। आज भारत को इण्डिया से भारतवर्ष बनाने की आवश्यकता है। आज देश के नौनिहालों, बालक-बालिकाओं, युवा-युवतियों और समस्त भारतवासियों को भारतवर्ष के अतीत को समझने की आवश्यकता है। आज की शिक्षा-व्यवस्था में मात्र प्रमाणपत्र-डिग्री और डिप्लोमा पाने की आवश्यकता नहीं

शेष भाग पृष्ठ ५२२ पर

छत्तीसगढ़ की धरोहर – डॉ. तीजन बाई

श्रीमती मिताली सिंह, बिलासपुर

बच्चो, तीजन बाई का नाम आते ही हमारे मन में पंडवानी का स्मरण हो आता है, मानो दोनों एक दूसरे के पूरक हों। डॉ. तीजन बाई, जो कभी विद्यालय नहीं गईं, परन्तु उन्हें महाभारत की कहानियाँ कण्ठस्थ थीं। उनकी पंडवानी ने पूरे छत्तीसगढ़ में उनके नाम को पहचान दिलायी। तीजन बाई का जन्म २४ अप्रैल, १९५६ को छ.ग. के दुर्ग जिले के एक छोटे से गाँव पाटा नातारी में हुआ था, किन्तु उनका पालन-पोषण उनके ननिहाल ग्राम गनियारी में हुआ था। तीजन जी के पिता का नाम हुनुकलाल पारधी और माँ का नाम सुखवती है। उन्होंने मात्र १२-१३ वर्ष की आयु में पंडवानी का गायन प्रारम्भ किया था। तो आओ बच्चो, आज हम जानेंगे कि कैसे वे पंडवानी गाने लगीं और कैसे उन्होंने इसका देश-विदेश में प्रचार-प्रसार किया।

एक बार बचपन में जब तीजन अपने भाई-बहनों के साथ खेलकर धूल-मिट्टी से सनी घर वापस आयीं, तो उनकी माँ ने उन्हें धूल-मिट्टी साफ कर नहाकर आने को कहा। वे पास के सरोवर में स्नान करने चली गयीं। स्नान कर वे वापस अपने घर आ रही थीं। सरोवर के किनारे ही उनके नाना वृजलाल पारधी की छोटी सी कुटिया थी। कुटिया के पास से वापस आते समय उन्हें नाना के द्वारा गाते हुये द्रौपदी चीरहरण की कथा सुनाई पड़ी। वे सुनकर वहीं रुक गयीं। कथा सुनकर उनका रोम-रोम खड़ा हो गया। उन्हें यह कथा इतनी अच्छी लगी कि अब वे अपना खेल छोड़कर प्रतिदिन छिपकर अपने नाना से कथा सुनने जाने लगीं।

एक दिन जब वे बाहर खड़े होकर कथा सुन रही थीं, तब उनके नाना को बाहर किसी के खड़े होने का आभास हुआ। जब उन्होंने पूछा कि बाहर कौन हैं? तब तीजन ने कहा, 'बाबा, मैं हूँ तीजन'। वे अपने नाना से बहुत डरती भी थीं। तब उनके नाना ने पूछा कि तुम यहाँ छिपकर क्यों खड़ी हो? तब उन्होंने कहा, मैं प्रतिदिन यहाँ आकर आपसे कथा सुनती हूँ। तब नाना जी ने उन्हें अन्दर बुलाकर बैठने को कहा। उन्होंने पूछा, कब से आ रही हो यहाँ? उन्होंने कहा ७ दिन से। नाना जी ने पूछा कि अब तक क्या सुनी हो, सुनाओ। तब तीजन जी ने उनके ७ दिन की कथा को मात्र १० से १५ मिनट में सुना दिया। इसे सुनकर नाना जी ने स्नेहपूर्वक उनके सिर पर हाथ रखकर आशीर्वाद दिया और तीजन को तीन महीने तक बुलाकर महाभारत की जन्म से लेकर स्वर्गारोहण की कथा सुनाई। उसके बाद उन्होंने तीजन से सुनाने को कहा। तीजन ने उसे मात्र १५ दिनों में गाकर सुना दिया। उसे सुनकर उनके नाना जी ने बहुत प्रसन्न होकर कहा, मैं वर्षों से जिसे ढूँढ रहा था, वह अनमोल हीरा आज मेरे घर में ही मिल गया। उन्होंने तीजन को दीक्षा दी और उपहार में अपना एकतारा दे दिया। उनके नाना ने कहा – मेरी कथा अब समाप्त हो गयी, अब तुम मुझे प्रतिदिन आकर कथा सुनाना। फिर तीजन जी ने कहा कि ठीक है, भगवान की यह कथा मुझे सुनाने का और कुछ अधूरी-चीजों को पूरा करने का अवसर मिलेगा। वे रात में सोते समय जैसे ही आँखें बन्द करती थीं, उनकी आँखों के सामने महाभारत कथा का दृश्य दिखाई देने लगता था और साथ ही बाँसुरी की धुन भी सुनाई देती थी। सुबह आकर वे अपने नाना को गाकर सुनाती थीं। उनके नाना ने कहा कि मैं तो तुम्हें पाण्डवों की कथा सुनाता था, पर तुम इसे गाकर कैसे सुना रही हो? तब तीजन ने कहा – नाना, मुझे रात को सोते समय इसके गायन और मुरली की धुन सुनाई देती है। मैं वैसे ही आपको सुना देती हूँ।



इसके बाद वे धीरे-धीरे मंच पर प्रदर्शन करने लगीं। पंडवानी गायन के प्रारम्भ में उनका बहुत विरोध भी हुआ। यहाँ तक कि उनकी माँ ने भी उनसे कह दिया था, या तो तुम अपने घर को चुनो या गायिकी को। तब तीजन ने मन से पंडवानी गायन का ही चुनाव किया। वे पंडवानी को कपालिक शैली में गाती थीं। उन्होंने पहले अपने देश में, फिर विदेशों में भी ख्याति अर्जित की।

शेष भाग पृष्ठ ५२२ पर

भजन एवं कविता



काली महा करवाल लिये कर

डॉ. अनिल कुमार 'फतेहपुरी', गयाजी, बिहार

काली महा करवाल लिये कर,
दुष्टन कौ भुज-शीश उड़ावत।
देखि कराल भयानक मूरति,
दैत्य सबै भागत भय खावत।।

मुंड पै मुंड उड़े रण में,
अरु भूतल शोणित-धार बहावत।
कुंजर-बाजि करै चित्कार,
मचावत शोर चहूँ दिशि धावत।।

श्यामल मेघ सों अंग-द्युति,
अरु कंठ में मुंड को माल सुहावत।
कुंदकली सम श्वेत दशन,
अरु रक्तिम रसना रक्त चुआवत।।

दुर्मद दैत्य दहाड़ करै मिलि,
देवि पै आयुध-शूल चलावत।
देवि उठाई के दानव कौ,
मुख मेलि समूल अहार बनावत।।

देखि इ उत्कट शौर्य पराक्रम,
देव सबै जयकार लगावत।
अंजुलि में भरि पुष्प सुगन्धित,
देवि के शीश पै हर्षित नावत।।

ठाकुर अब तो किरपा कीजै ।

डॉ. सत्येन्दु शर्मा, रायपुर

ठाकुर अब तो किरपा कीजै ।
पामर पतित चरण में आयो, का देगा परनामी ।
पाप-ताप दुर्गुण की हमरी, गठरी भिक्षा लीजै ।।
ठाकुर अब तो किरपा कीजै ।।
भोगा छक संसार क्षणिक सुख, मन नहिं राम रमाया ।
दुर्बल देह जरा में जाना, तू ही एक सहारा ।
सबके उन्मोचनकर्ता हो, स्वामी शरण्यं दीजै ।।
ठाकुर अब तो किरपा कीजै ।।
जो आये तर जाये दर पर, होवत सफल मनोरथ ।
कीरति सुनि तो मन रति लायो, प्रभु तक मिलहिं सरल पथ ।
तारनहार पकड़ि के अंगुली, जय जय जय करि दीजै ।।
ठाकुर अब तो किरपा कीजै ।।

हे दीप-ज्योति! जग आलोकित कर।

आनन्द कुमार तिवारी 'पौराणिक'

तम रहे कहीं न रंच मात्र भर !
हे, दीप ज्योति ! जग आलोकित कर।।
अब भी लाखों घरों में आये नहीं उजाले।
कितने मुँहों से छिन गये निवाले।।
जिनकी रातें घनी अँधेरी, जीवन नीरस निष्प्राण।
चेहरों पर रुदन, बेबसी, आया नहीं विहान।।
खुशियाँ सब लिए अब जाना होगा उनके घर।
हे, दीप ज्योति ! जग आलोकित कर।।

घोर निराशा कभी नहीं आराध्य हमारा।
आशा और विश्वास लक्ष्य है प्यारा।।
यही प्रार्थना – 'तमसो मा ज्योतिर्गमय'
जग-हित कामना, सब हो मंगलमय।।
समृद्धि, शान्ति, जग में हो, हँसी हो हर मुख पर।
हे, दीप ज्योति ! जग आलोकित कर।।

छात्र और अध्यापक : एक रथ के दो पहिए

बलराज मधोक

छात्रों में व्याप्त अशान्ति तथा अनुशासनहीनता के बारे में देश का हर व्यक्ति चिन्तित है। वैसे तो यह समस्या आज केवल हमारे ही देश में नहीं, बल्कि एक विश्वव्यापी समस्या बन गई है। फिर भी हमारे देश की परिस्थितियाँ आज अन्य देशो से भिन्न हैं और इस समस्या की तुलना अन्य देशों की समस्या से नहीं की जा सकती। प्रस्तुत विधेयक केन्द्रीय विश्वविद्यालय (छात्रों का भाग लेना) विधेयक इस समस्या के एक पहलू का समाधन करने का प्रयास करता है और जहाँ तक इसका सम्बन्ध है, स्वागत है। किन्तु इससे ही सारी समस्या का हल नहीं हो जाता। छात्र समाज के अंग हैं और समाज में सामान्य अशान्ति तथा आम अनुशासनहीनता का प्रभाव उन पर भी पड़ता है। इसलिए जब तक देश में समाज के वातावरण और अनुशासन के वातावरण में समूचे तौर पर सुधार नहीं होता, हम छात्रों से भिन्न बर्ताव की आशा नहीं कर सकते, क्योंकि इन पर समाज के वातावरण का प्रभाव अवश्य पड़ेगा।

शिक्षा की समस्याएँ एक प्रश्न है। वर्तमान शिक्षा पद्धति के जन्मदाता अंग्रेज हैं जिनका उद्देश्य केवल क्लर्क तैयार करना था। किन्तु स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद भी शिक्षा प्रणाली वही चल रही है, जो कि परिस्थितियों के अनुकूल नहीं है। स्वतन्त्रता से पूर्व इस प्रणाली में कुछ राष्ट्रीय भावना अवश्य थी और यही कारण था कि स्वतन्त्रता संग्राम में देश के छात्रों ने सराहनीय भाग लिया था। इस प्रणाली में पहले अध्यापकों तथा राजनेताओं का एक प्रकार का नैतिक असर भी था, लेकिन स्वतन्त्रता के पश्चात् वे चींजे समाप्त हो गई हैं। निरपेक्षता के नाम पर नैतिक शिक्षा तथा राष्ट्रीय उमंग की लहर भी समाप्त हो गई है। जब तक हम देश के आर्थिक वातावरण में सुधार नहीं करते और नैतिक स्तर कायम नहीं करते, तब तक स्थिति में सुधार होना बड़ा कठिन है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली में सुधार करना आवश्यक है। विद्यार्थियों के लिए रचनात्मक क्रिया-कलापों की व्यवस्था करना आवश्यक है। कॉलेजों तथा विश्वविद्यालयों में कुछ ऐसे विषय हैं, जिसमें छात्रों का परामर्श लेने की आवश्यता नहीं रहती है, लेकिन कुछ मामले ऐसे हैं, जिससे विद्यार्थियों का सीधा सम्बन्ध है, जैसे छात्रों के कल्याण-खेलकूद, कैंटीन, हॉस्टल आदि से सम्बन्धित सुविधाएँ और इन मामलों में उनसे अवश्य विचार-विमर्श किया जाना चाहिए। इसी प्रकार विद्यार्थियों की वास्तविक शिकायतों और कठिनाइयों के बारे में विचार किया जाना चाहिए। छात्रों को भी विधिवत् मान्यता दी जानी चाहिए और उनके कृत्यों की स्पष्ट रूप से परिभाषा दी जानी चाहिए। कॉलेज तथा विश्वविद्यालय के अधिकारियों को छात्रों के दृष्टिकोण पर समुचित रूप से विचार करना चाहिए। छात्र और अध्यापक एक ही रथ के दो पहिए हैं जिन्हें एक साथ काम करना आवश्यक है और उनके बीच एक प्रकार के सहयोग का होना भी आवश्यक है। विद्यार्थियों को केवल विश्वविद्यालयों से नहीं, अपितु समूचे देश में सम्बन्धित मामलों में विचार-विमर्श करने का अवसर दिया जाना चाहिए। जब १८ वर्ष अथवा उससे अधिक आयु के लोगों को मतदान देने का अधिकार है, तो फिर कॉलेजों में अध्ययन करने वाले छात्रों को, जिनकी आयु इससे अधिक ही होती है, राजनीति से बिलकुल अलग रखने का औचित्य क्या है? इसलिए छात्र संघों को ऐसे कार्यक्रम आयोजित करने चाहिए, जिनसे छात्रों को राजनीतिक शिक्षा दी जा सके। ○○○

(एबीवीपी के संस्थापक व जनसंघ के सांसद के २१ मार्च, १९६९ को लोकसभा में दिए भाषण के सम्पादित अंश)

कविता

हे जगद्धात्री महाकाली माँ

डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, रायपुर

घोर रात्रि के अन्धकार में तेरा, दिव्य रूप है दिखता।
सभी कर्म अपने जीवन के, कृपा तुम्हारी पाने करता।।
सकल विश्व की तुम जननी हो, जग-जीवन तुमसे ही चलता।
सर्वस्वरूपिणी आत्मरूपिणी, दिव्य भाव तुमसे ही मिलता।।
परात्परा माँ महायोगिनी, त्रिगुण भाव तुममें ही रहता।
भक्ति तुम्हीं हो, ज्ञान तुम्हीं हो, भवभय माँ तुमसे ही मिटता।।
हे जगद्धात्रि महाकालि माँ, तव चरणों में सब सुख मिलता।
सकल जगत्-व्यापार भुलाकर, नाम मधुर तेरा मैं जपता।।



श्रीरामकृष्ण-गीता (६४)

(द्वादश अध्याय १२/१२)

स्वामी पूर्णानन्द, बेलूड़ मठ

(स्वामी पूर्णानन्द जी रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी हैं। उन्होंने २९ वर्ष पहले इस पावन श्रीरामकृष्ण-गीता ग्रन्थ का शुभारम्भ किया था। इसे सुनकर रामकृष्ण संघ के पूज्य वरिष्ठ संन्यासियों ने इसकी प्रशंसा की है। विवेक-ज्योति के पाठकों के लिए बंगला भाषा से इसका हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

ततः परं स संगृह्य दिनकतिपयान्तरे।
साधुर्दुग्धवतीमेकां गोधेनुमानिनाय ह।।१४४।।

– तदनन्तर वे साधु बाबा कुछ दिन बाद ही एक दूध वाली गाय दान में ले लाए।

भिक्षाटनात् स दुग्धाय निववृते ततोऽवधिः।।
ग्रामं ग्रामं परिभ्रम्य धेनवे क्रमशोऽपि च।।१४५।।
साधुर्याचितुमारेभे स पलालतृणादिकम्।
ते ग्रामवासिनः सर्वे पुनस्तदेत्युवाच तम्।। १४६।।

– तब से साधु को दूध की भिक्षा नहीं करनी पड़ी, किन्तु क्रमशः गाँव-गाँव में जाकर गाय के लिए घास, चारा आदि भिक्षा माँगने लगे। तब पुनः उन सभी ग्रामवासियों ने कहा –

भवत्कुटीरसंलग्ने भूमावप्रहते तथा।
कुरुतां कृषिकार्यं वै तृणपलालहेतवे।
भवतस्तर्हि भिक्षायैः पुनर्नास्ति प्रयोजनम्।।१४७।।
अथैवमुपदिष्टः सन् सकलैर्ग्रामवासिभिः।
पार्श्वस्थेऽवापिते क्षेत्रे आरेभे कृषकर्म सः।।१४८।।

– आपकी कुटिया के समीप जो जमीन है, उसमें खेती कीजिए, तब आपको घास, चारा के लिए भिक्षा नहीं करनी पड़ेगी। तदनन्तर सभी ग्रामवासियों के परामर्श से वे साधु बाबा निकटस्थ जमीन पर खेती करने लगे।

क्रमान्नियोजयामास लोकादीन् कृषिहेतवे।
सञ्चिते सति शस्यादौ तस्य संरक्षणाय च।। १४९।।
स प्रस्तुत्य कुशूलादीन् महोत्साही गृहस्थवत्।
साधकः क्षपयन्नासीन्नितरां दिवसांस्ततः।।१५०।।

– खेती करने के लिए उन्हें क्रमशः सेवकों को नियुक्त करना पड़ा। जब फसल संचित होने लगी, तो उसके लिए बखार बनवाकर वे ठीक गृहस्थों जैसे अत्यन्त व्यस्त होकर दिन बिताने लगे।

साधोर्गुरुरुपातिष्ठत्तत्र कियाद्दिनात् परम्।
विषयवैभवं दृष्ट्वा पृच्छत्येकं स्म किङ्करम्।।१५१।।
आसीत् कुटीरमध्येऽत्रैकस्त्यागी कश्चिदेकदा।
कुतो गतः स वा क्वास्ते ननु किं वक्तुमर्हसि।।१५२।।

– कुछ दिन बाद साधु के गुरुजी वहाँ आये। उन्होंने वह सब विषय-वैभव देखकर एक नौकर से पूछा – यहाँ पहले एक त्यागी साधु कुटिया में रहते थे। वे कहाँ गए हैं या कहाँ हैं, बता सकते हो क्या?

नाशक्नोत् प्रतिवक्तुं स किमपि परिचारकः।
प्रविश्याथ गृहं साधोः शिष्यं सन्दृश्य चाग्रतः।।१५३।।
सर्वमिदं नु किं वत्स पप्रच्छेति स तत् गुरुः।
व्रीडितः सन् स शिष्यस्तत् पतितः पादयोर्गुरोः।।१५४।।
प्रोवाच भगवन् चेदं तु कौपीनैकहेतवे।
साधुस्ततो गुरुं सर्वं विस्तरेण न्यवेदयत्।।१५५।।

– नौकर कोई उत्तर नहीं दे सका। तब उन्होंने ही साधु के घर में प्रवेश कर शिष्य को देखकर पूछा – वत्स ! ये सब क्या है? शिष्य दुखित होकर गुरुजी के चरणों में गिरकर कहने लगा – 'भगवन् ! ये सब एक कौपीन के लिए।' उसके बाद साधु ने एक-एक कर सभी वृत्तान्त गुरुजी को बताया।

इत्थं सद्यो निरासक्तः सोऽभवद्दर्शनाद् गुरोः।
सन्त्यज्य विषयान् सर्वान् सोऽनुगामी गुरोरभूत्।।१५६।।

– गुरुजी के दर्शन से वे तुरन्त अनासक्त हो गए और तत्क्षण सकल विषय-सम्पत्ति को त्याग कर गुरु के अनुगामी हो गए। **(क्रमशः)**

प्यार बच्चों पे लुटाएँ, तो कोई बात बने

सुश्री कृष्णा कुमारी

पुरस्कार, शाबाशी, प्रशंसा आदि का प्रयोग मनुष्य को उत्साहित करके प्रेरित करने के लिए किया जाता है, वहीं दण्ड एवं सजा का प्रावधान व्यक्ति में सुधार लाने हेतु होता है। इन दोनों बातों में थोड़ा-बहुत साम्य होते हुए भी बहुत-कुछ भिन्नता है। पुरस्कार, प्रशंसा जहाँ सकारात्मक ऊर्जा से परिपूर्ण करते हैं, वहीं दण्ड एवं सजा नकारात्मकता को उत्पन्न करते हैं। ध्यातव्य है कि नकारात्मक ऊर्जा से कभी सकारात्मकता निर्मित नहीं होती है।

हमारे पास दोनों मार्ग होते हैं। किन्तु हम इनमें से नकारात्मक शब्दों का प्रयोग ही अधिक करते हैं, कम-से-कम बच्चों के मामले में तो स्कूल हो या घर; बात-बात पर उन्हें सजा देना, डाँटना, कोसना आम बात है। माता-पिता, शिक्षक या अन्य बड़े लोग बालकों को डराते-धमकाते ही नजर आते हैं।

उनका मत है कि 'लातों के भूत बातों से नहीं मानते' या 'डर के मारे तो भूत भी भागते हैं' अथवा क्या करें? बच्चों को सही मार्ग पर लाने के लिए ये सब करना आवश्यक है, वरना बच्चे बिगड़ जायेंगे। वाह ! क्या खूब... क्या कहूँ आगे...।

मार से भूत भागते हैं या नहीं, ये तो किसी ने शायद ही देखा हो, किन्तु प्यार से बालक पास आते हैं एवं हर बात मान लेते हैं, यह मैंने बहुत देखा है और प्रतिदिन देखती हूँ।

कहो प्यार से पास बैठा के सब कुछ
तुम्हारी वो हर बात को मान लेंगे।

आखिर बच्चे तो बच्चे की तरह ही रहेंगे, बड़े लोग जरा अपने गिरहबान में झाँककर देखें, यानी अपने बचपन को याद करके देखें कि उन्होंने क्या-क्या गुल नहीं खिलाए थे। क्या उन्होंने शरारतें नहीं की थीं? छोटी-छोटी मासूम चोरियाँ नहीं कीं? पढ़ाई से जी नहीं चुराया, आदेश के अनुपालन में कोताही नहीं बरती? और भी छुप-छुपकर क्या कुछ नहीं किया? जबकि आज देखा जाए, तो बच्चों का बचपन तो टी.वी., इण्टरनेट, बस्ते के बोझ, होमवर्क, आधुनिक जीवन-शैली, खेल से दूरी, सह-शैक्षिक क्रियाओं की इति श्री आदि ने छीन ही लिया है। बच्चों में वह बचपना, मासूमियत अब रही ही कहाँ है, जिस पर न्यौछावर हुआ जा सकता है। शरारतें भी कम ही बची हैं, जो थोड़ी-बहुत बची हैं, उन्हें भी तो हम छीनते जा रहे हैं।

घर हो या स्कूल, बच्चों से बार-बार यही कहा जाता है, 'तुम किसी काम के नहीं हो, तुम निरे गधे हो, तुम्हारे दिमाग में भूसा या गोबर भरा हुआ है, तुम्हारा कुछ नहीं हो सकता, तुम पढ़ नहीं सकते, तुम किसी काम के नहीं हो, आदि-आदि। अब यदि बालक को रात-दिन ऐसे ही नकारात्मक ऊर्जा मिलेगी, तो क्या होगा? बच्चा इससे कुण्ठित होगा और धीरे-धीरे बाल-अपराधी भी बन सकता है। यह सब करके आप बालक से चाहते क्या हैं?

बच्चा झूठ बोलता है, क्योंकि वह बड़ों से डरता है। इसीलिए बहाने भी बनाता है। यदि वह स्कूल या घर में सच बोलता है, तो उसकी बात पर विश्वास नहीं किया जाता है। अब बच्चा करे भी तो क्या? सजा, दण्ड उसे और ढीठ बना देते हैं। उसका कोमल मन आहत होकर रह जाता है। वैसे भी बड़े होने का अर्थ यह तो नहीं कि हम बच्चों पर अत्याचार करें, निर्दयता से उन्हें पीटें या कठोर दण्ड दें। यह अधिकार हमें किसने दिया है? बड़े होने का अर्थ तो विनम्रता है, क्षमाशीलता है। महाकवि रहीम ने लिखा है, 'क्षमा बड़न को चाहिए, छोटन को उत्पात।' लेकिन बड़ों का अहंकार उन्हें ऐसा करने नहीं देता। बालक उनकी बात नहीं माने, तो वे तिलमिला उठते हैं। आखिर वे बड़े हैं, बच्चे की हिम्मत कैसे हुई कि उनकी बात की अवहेलना कर दी। ये बातें सब जानते हैं, किन्तु मानते कम ही हैं। प्राय: बड़े लोग अपनी बुद्धि, ज्ञान, विद्वत्ता, अनुभव आदि से बच्चों को तौलना चाहते हैं, जो बच्चों के साथ अन्याय है। जब स्कूल में छात्रों को सबके सामने दण्ड दिया जाता है, तो उनके मन पर क्या गुजरती होगी? वे कितना अपमानित अनुभव करते होंगे, कभी सोचा है बड़ों ने? उनकी जगह वे स्वयं को रखकर देखें। दण्ड से, भय से हम बच्चों को कुछ समय के लिए अपनी बात मानने को बाध्य कर सकते हैं, स्थायी रूप से नहीं। यही नहीं, जब आपके बच्चों को

इसी प्रकार स्कूल में शिक्षकों द्वारा दण्ड दिया जाता है, तब आपको कितना दर्द होता है? कितनी गालियाँ देते हैं आप उन शिक्षकों को? तो फिर जैसा व्यवहार हम नहीं चाहते, वैसा दूसरों के साथ क्यों?

भय से प्रीति नहीं होगी; प्रीति प्रीति से ही होगी। घर में, स्कूल में बालक को तनावग्रस्त, भययुक्त वातावरण मिलता है, तो उससे बचने के लिए वे अलग रास्ते ढूँढ़ते हैं। क्योंकि कोई भी उनकी बात सुनने को, उस पर विचार करने को तैयार नहीं होता है। अन्ततः बालक की कुछ तो परेशानी हो सकती है। कितने ही बच्चे हैं, जो स्कूल तो जाते हैं, लेकिन वहाँ से बचकर इधर-उधर, कभी-कभी तो मन्दिर में समय व्यतीत करके स्कूल टाइम के समाप्त होने के वक्त घर लौट आते हैं।

इन सबके लिए जिम्मेदार कौन हैं? माता-पिता या शिक्षक...।

न घर ही लौटा, न पहुँचा शाला में, बच्चा पिटने से डर गया होगा।

हमने तो बालक को मात्र परीक्षा में अधिक अंक लाने की मशीन बनाकर रख दिया है। एक दिन होमवर्क नहीं करे, तो घर में तूफान खड़ा हो जाता है। स्कूल में मेज पर खड़ा कर दिया जाता है। मत भूलिए, बालक बालक है, कोई मशीन नहीं। और यह भी सोचिए कि मशीन भी कभी-कभी आदेश के अनुसार कार्य सम्पन्न नहीं करती है।

अपने अनुभव की एक घटना मैं आपको बताती हूँ – मेरी कक्षा की एक छात्रा दो महीने से स्कूल नहीं आ रही थी। मैंने अन्य बच्चों से कहकर, उसे एवं उसकी माँ को बुलवाया। माँ ने भी शिकायतों के अम्बार लगा दिए। मैंने समझाया, किन्तु बात नहीं बनी।

छात्रा कल आने का बहाना करके चली गई। फिर दो-चार दिनों के बाद बुलवाया, तब भी नहीं आयी। उसने कहलवाया कि 'मैंडम को ही मेरे पास भेज दो।' फिर दो-चार दिनों के बाद मैंने यह कहकर बुलाया कि केवल वह मुझसे मिलने आ जाए, पढ़ने नहीं। आज उसके पिता उसे लेकर आये। छात्रा रो रही थी। शायद घर पर उसे डाँटा या पीटा गया था। आज भी वही बात की कि आज मैं नहीं रुकूँगी। कल स्कूल आ जाऊँगी। मैंने कहा कि 'पढ़ो मत, बस कुछ देर ठहर जाओ, खेल लो, लंच में खाना खाकर चली जाना।'' बहुत ही मुश्किल से एवं प्रेम-प्रदर्शन के बाद वह रुकी। कुछ देर में सहज हुई। फिर स्वतः ही बोर्ड पर लिखे कार्य को करने लगी। कुछ देर बाद मैंने पूछा कि वह स्कूल क्यों नहीं आना चाहती? बोली कि अमुक सर मुझे बहुत पीटते हैं। एक बार तो प्रार्थना-सभा में सबके सामने उसके मुँह में गुटका भरा होने पर बहुत बुरी तरह थप्पड़ लगाये थे। तब वह बहुत रोई थी, काँप उठी थी। इसके बाद भी एक-दो बार उसे पीटा गया। मैंने उसे आश्वस्त किया कि अब उसे कोई हाथ नही लगाएगा। मैं सर से कह दूँगी। छात्रा को मुझ पर भरोसा हो गया। फिर वह पढ़ने भी लगी। पोषाहार भी खाया। फिर मैंने कहा, 'घर जाना है, तो चली जाओ' तो उसने अस्वीकार कर दिया और स्कूल में पढ़ती रही, जबकि वह एक क्षण स्कूल में ठहरने को तैयार नहीं थी। हाँ, उसे रोकना इतना आसान तो नहीं था, लेकिन बच्चे की समस्या को जानने के बाद उसका समाधान किया जाए, तो इस तरह की अप्रिय घटनाओं से बचा जा सकता है और बच्चों को उचित मार्ग पर भी लाया जा सकता है क्योंकि मूलतः बच्चा बहुत मासूम और जिज्ञासु होता है। अन्ततः प्यार की जीत हुई।

मैं तो इतना ही कहना चाहती हूँ कि बच्चों से प्यार से व्यवहार कीजिए, तो वे हर बात मानेंगे, संस्कारी नागरिक बनेंगे। उनकी बात की उपेक्षा नहीं करके उनको महत्त्व दीजिए, उनका सम्मान कीजिए। उनकी मजबूरियों को, परेशानियों को सुनिये, उनके भागीदार बनिए, उन्हें हल करने का प्रयास कीजिए। बालक भी तो वही सब करना चाहता है, जो आप उससे करवाना चाहते हैं। सम्मान देने से ही सम्मान मिलता है। केवल बड़े होने का अर्थ सम्मान के योग्य होना नहीं होता है। बालक तो प्रकृति से ही स्वाभिमानी होता है। उस पर जोर-जुल्म करने से पहले इतना-सा सोच लें कि वह भी किसी का बेटा या बेटी है। उसे अपनी उम्र, बुद्धि, विद्वत्ता से न तौलकर, बालक को बालक ही जानकर उससे उचित व्यवहार करें क्योंकि हमेशा बच्चा गलत नहीं होता। बालक को बालक ही रहने दें, उम्र से पहले उससे अपनी जैसी विद्वत्ता की आशा रखना छोड़ दें, तो बहुत-सी समस्याएँ अपने-आप सुलझ जायेंगी।

डाँट-फटकार से कुछ, बात नहीं बनती है।
प्यार बच्चों पे लुटाएँ, तो कोई बात बने। ○○○

('कल्याण' से साभार)

त्रिमूर्ति-वन्दना

रामकुमार गौड़, वाराणसी

(यह अद्भुत वन्दना गोस्वामी तुलसीदास जी द्वारा रचित कवितावली के कवित्त छन्द – 'अवधेश के बालक चारि सदा, तुलसी मन मन्दिर में विहरैं' की तर्ज पर रचित है। इस भावप्रवण विलक्षण वन्दना की प्रथम पंक्ति में श्रीरामकृष्णदेव की गुणावली, द्वितीय पंक्ति में श्रीमाँ सारदा देवी की गुणावली, तृतीय पंक्ति में स्वामी विवेकानन्द की गुणावली और चतुर्थ पंक्ति में भक्त की अभिलाषा का वर्णन है। – सं.)

जो श्री अघोरमणि को गोपाल की, माँ कह सहज पुकार करैं।
जो दिव्य भावरंजिताकार, उद्‌बोधन-बागबाजार करैं।
जो नृत्यांगना-भजन सुनकर, सबमें समदृष्टि उदार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१३५।।

जो दयानन्द स्वामी से मिलकर, सत्प्रसंग भगवान करैं।
जो काशी आकर रामकृष्ण-सेवाश्रम में धन दान करैं।
जो प्लेगग्रस्त कोलकाता में, बहु सेवाकार्य उदार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१३६।।

जो फलहारिणी कालिकापूजा, अनुष्ठान सविशेष करैं।
जो ठाकुर के संग दिव्यानन्द का, अनुभव हृदय प्रदेश करैं।
जो गुरुवर शीशमुकुटमणि सब, लोकोत्तर चरित उदार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१३७।।

जो वृन्दावन की रज बिखेर, दक्षिणेश्वर धाम महान करैं।
जो ठाकुर द्वारा पूजित हो, संकल्पसिद्ध भगवान करैं।
जो गुरुवर-चालित यंत्र सदृश, सब कर्म यथेष्ट प्रकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१३८।।

जो रासमणी में थप्पड़ से ही, भक्ति-भाव-संचार करैं।
जो जयरामबाटी में भ्राताओं-सँग उदार व्यवहार करैं।
जो भारतवर्ष-प्राण-वीणा में, कालजयी झंकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१३९।।

जो दक्षिणेश्वर कोठी-छत पर, आकुल हो, भक्त पुकार करैं।
जो शिष्य सारदानन्द संग भी, लज्जा-पट-व्यवहार करैं।
जो बेलूड़ मठ-दुर्गापूजा, प्रारम्भ विशेष प्रकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१४०।।

जो श्रीअघोरमणि को दर्शन से, धन्य विशेष प्रकार करैं।
जो श्रीबलराम भक्त का घर, परिवार कृतार्थ अपार करैं।
जो श्रीबलराम-भवन में रामकृष्ण, मठ को साकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१४१।।

जो भक्त गिरीश घोष का कलुषित, कर्म-भार स्वीकार करैं।
जो दिव्य स्वप्न से स्वामि अपूर्वानन्द, को धन्य अपार करैं।
जो भिनगाराज का धन काशी-आश्रम-निमित्त स्वीकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१४२।।

जो भक्त मारवाड़ी के धन को, लेने से इनकार करैं।
जो त्यागीश्वर पति के आदर्शों, को चरितार्थ अपार करैं।
जो संघबद्ध त्यागी गुरुभ्राता–संग प्रमोद विहार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१४३।।

जो मातृभाव के अनुपम विग्रह, माँ काली-गुणगान करैं।
जो रामकृष्ण की दिव्य सहचरी, ज्ञान-भक्ति का दान करैं।
जो परिव्राजक पदचारी हो, अध्यात्म भाव-संचार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१४४।।

जो उच्छल भक्ति-तरंगराशि से, उन्नत भाव-विचार करैं।
जो मातृस्नेहमय कृपा दृष्टि से, भाव उदार प्रसार करैं।
जो मनुष्यत्व-दिव्यत्व प्रकट, करने का धर्म प्रचार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१४५।।

जो दीनबन्धु बहुभावसिन्धु, बहु भाव-तरंग-विहार करैं।
जो मंगल-पथ पर सदा चलाकर, निर्मल भाव-विचार करैं।
जो बल-साहस को ही स्वधर्म-पाथेय पुकार-प्रचार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१४६।।

जो सदानन्दमय ब्रह्म दिव्य-दर्शन-भावित आचार करैं।
जो विमल दृष्टि के साथ धर्म-पालन का भाव-प्रसार करैं।
जो मुखमण्डल के दिव्य भाव से, मन को विगतविकार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१४७।।

जो विरहित तर्क विचार भक्ति-फल, खाने का उपदेश करैं।
जो परहितचिन्तन-विनम्रता-सेवा-आचरण विशेष करैं।
जो धर्मसनातन में सेवा का, सुमधुर स्वर गुंजार करैं।
प्रभु रामकृष्ण, श्रीमाँ, स्वामीजी, हृदय सदैव विहार करैं।।१४८।।

गीतातत्त्व-चिन्तन

सोलहवाँ अध्याय (१६/३)

स्वामी आत्मानन्द

ज्ञानयोगव्यवस्थितिः – शंकराचार्य कहते हैं कि जो ज्ञान हमें शास्त्रों से मिलता है, संत महापुरुषों से मिलता है, अर्थात् उपदेश द्वारा जो हम अर्जित करते हैं, उसको हम ज्ञान कहते हैं और उस ज्ञान को अपने जीवन में उतारना, अपने व्यवहार में उतारकर उसे अनुभव से जानना योग कहलाता है। हम ज्ञानयोग की व्यवस्थिति में लगे रहें अर्थात् जो सुनते-पढ़ते-समझते हैं, उसको अपने जीवन में उतारने का सतत प्रयत्न करते रहें। सतत प्रयत्न का यह भाव ही व्यवस्थिति कहलाता है, अर्थात् उस भाव में स्थित हो जाना। एक चींटी एक दाना लेकर दीवार पर चढ़ने का प्रयत्न करती रहती है। बार-बार गिरती है और उठकर बार-बार चढ़ती है। उसकी यही लगन है व्यवस्थिति।

दानम् – दान होता है अपने स्वार्थों पर रोक लगाने के लिए। भोगने के लिए तुम्हारे पास आवश्यकता से अधिक वस्तुएँ हैं, उनमें से कुछ का वितरण समाज में कर दो। जिनके पास उन वस्तुओं का अभाव है, उन्हें वे दे दो। यह दान की दृष्टि है। आवश्यकता से अधिक वस्तुएँ अपने पास संचित करके समाज को उनसे वंचित कर देना उचित नहीं है।

दमः – इन्द्रियों पर रोक लगाना दम है। ये जो हमारी इन्द्रियाँ अपने विषय-भोगों की ओर सतत भागती रहती हैं, उन पर नियन्त्रण रखें। इतना भागते रहने से इन्द्रियों की शक्ति चली जाएगी। यहाँ तक तो बात समझ में आती है कि इन्द्रियाँ अपने विषयों का उपभोग करना चाहती हैं, पर वे सतत भागती रहें? वैसा करने से उनकी शक्ति का जो वृथा क्षय होता है, उस पर रोकथाम लगाना आवश्यक है। ठीक है कि प्रकृति द्वारा नियोजित होकर ही इन्द्रियों को हम विषय-भोगों में लगाते हैं, परन्तु बारम्बार उन्हीं विषयों का वृथा चिन्तन करते हुए, उनमें संलग्न होते हुए उनकी शक्ति का ह्रास तो न होने दें ! विषयों का उपभोग करने में शक्ति का क्षय होता है, यह तो सभी जानते हैं, पर विषयों का चिन्तन करने में अधिक शक्ति खर्च होती है, यह सब नहीं जानते। इसी चिन्तन से इन्द्रियों को धीरे-धीरे विरत करना दम कहलाता है। इन्द्रियाँ यदि विषयों के ही चिन्तन में लगी रहेंगी, तो जिन बातों के चिन्तन में उनका विनियोजन आवश्यक है, वह नहीं हो पाएगा।





यज्ञः – यहाँ यज्ञ से तात्पर्य किसी धार्मिक अनुष्ठान से नहीं, बल्कि ऐसे कार्य से है, जिससे सबका कल्याण सधे। धार्मिक अनुष्ठान के रूप में तो यज्ञ स्वार्थी, पापाचारी असुर भी करते हैं, पर यहाँ उस यज्ञ की चर्चा तो नहीं है। जो कार्य अपने स्वार्थ के लिए नहीं, बल्कि बृहत्तर समाज के कल्याण के लिए होता है, वही यज्ञ है। यज्ञ में आहुति दिया जाना तो समर्पण का प्रतीक भर है। प्रकृति की उपकारी शक्तियों को अपने कल्याण के लिए और समाज के कल्याण के लिए आकर्षित कर लेना ही यज्ञ का तात्पर्य है।

स्वाध्यायः – उपरोक्त गुणों की ओर हमारा झुकाव तभी होता है, जब हम उनकी महिमा बताने वाले ग्रन्थों का अध्ययन करते हैं। शास्त्रों का अध्ययन ही स्वाध्याय कहलाता है। ऐसे ग्रन्थ पढ़ें, जो सत्कर्म करने की, सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा दें। जीवनोपयोगी साहित्य का पठन-मनन करें।

तप – तप करने का अर्थ है शरीर में कुछ कठोरता लाना। सुख-सुविधाओं के आदी न रहकर अपने आप में प्रत्येक परिस्थिति के अनुरूप ढल जाने की क्षमता पैदा करना। तपस्या वहाँ पर नहीं हो सकती, जहाँ पर मनुष्य असम्पन्न होता है। जिसके पास कुछ है ही नहीं, जो लाचार है, वह तपस्या क्या करेगा? जब योग के सब साधनों के रहते हुए अपनी नीति की रक्षा के लिए उनका उपयोग हम नहीं करते, तब तपस्या होती है। अपनी सुख-सुविधाओं पर

अंकुश लगाकर जब कुछ नियमों का अनुसरण हम करते हैं, तब तपस्या होती है।

आर्जवम् – अर्थात् ऋजुता, सरलता। रामकृष्ण परमहंस कहा करते थे कि मनुष्य जब तक सरल नहीं बनता, तब तक उसे सरल (ईश्वर) नहीं मिलता। अर्जुन के नाम का ही अर्थ है – वह व्यक्ति जो सरल है, जिसमें छल-कपट नहीं है। इसीलिए उसने भगवान को पाया।

अहिंसा – अर्थात् किसी को पीड़ा न देने का भाव। इसका अर्थ यह नहीं है कि चोरों, बदमाशों पर भी दया की जाए। भगवान ने अर्जुन को भी तो युद्ध में नियोजित किया ही था। पापी, अत्याचारियों का सामना करके उनका दमन करना, हिंसा नहीं, वह अहिंसा है। अहिंसा का अर्थ है – अपने सुख के लिए किसी को दुख नहीं पहुँचाना। परन्तु जो समाज में आतंक फैलाता है या हमारे जीवन में आतंक उपस्थित करता है, उसका मुकाबला करना ही चाहिए। अहिंसा का अर्थ कायरता नहीं है। बल है हमारे पास, किन्तु उसका बेहतर उपयोग यह है कि कोई हमें हानि न पहुँचा सके और न अपने बल का प्रयोग करके हम ही किसी को वृथा हानि पहुँचाएँ।

सत्य – सत्य के बारे में तो सभी जानते ही हैं।

अक्रोध – क्रोध का अभाव। मान लीजिए हमारे नौकर के हाथ से गिरकर तश्तरी टूट गई। उस पर एक प्रतिक्रिया तो यह हो सकती है कि हम नौकर पर क्रोध करें, किन्तु उससे तश्तरी तो वापस आएगी नहीं। दूसरी बात यह हो सकती है कि हमारे भय से वह नौकर काँपता ही रहे और हमारे सामने आने से कतराने लगे। ऐसी दशा में और अधिक गलतियाँ करता रहेगा। यदि क्रोध न करके हम ठीक तरह से उसे समझा दें, तो स्थिति सँभली रहेगी। किसी भी परिस्थिति में उसकी हानिकारक प्रतिक्रिया न हो।

त्याग – इस वृत्ति से भी सभी परिचित हैं।

शान्ति – मन की चंचलता के कारणों को अपने पास न फटकने देना।

अपैशुनम् – छिद्रान्वेषण जब करते हैं, दूसरों में दोष देखते हैं, तब उनकी चुगली भी करते रहते हैं। दोष जब देखते हैं, तो चिन्तन भी उन्हीं का चलता रहता है। उस समय उस चिन्तन में ही मन तो रम जाता है, पर हम यह भूल जाते हैं कि वैसा करते हुए हमने अपने गुणों के जंजीर की एक बड़ी कड़ी इतनी कमजोर बना दी है कि वह कभी भी टूट जाएगी। अत: अपैशुन का अर्थ है कि उस छिद्रान्वेषण का अभाव।

दया भूतेषु – अर्थात् प्राणियों के प्रति करुणा का भाव। कहते हैं देवता, असुर और मानव मिलकर प्रजापति के पास उपदेश लेने गये, तो प्रजापति ने एक ही अक्षर कहा 'द'। देवताओं ने समझा कि हम भोग बहुत करते हैं, तो प्रजापति दम करने के लिए कह रहे हैं। असुरों ने समझ लिया कि हम बड़े क्रूर हैं, सब पर बहुत अत्याचार करते हैं, इसलिए हमें दया करने का उपदेश मिला है। मनुष्यों ने समझा कि हम बड़े स्वार्थी हैं। केवल अपने ही लिए जीते हैं इसलिए प्रजापति ने हमें दान का उपदेश दिया है। एक ही अक्षर से तीनों ने अलग- अलग बातें समझ लीं। अपनी अपनी समझ की बात है।

अलोलुप्त्वं – विषय के किसी पदार्थ के सामने आ जाने पर हमारी इन्द्रियों में विक्षेप उत्पन्न न हो, तो उसको अलोलुपत्वं कहते हैं। हम समझें कि विषय तो संसार में ही है, इसलिए उनसे बचने के लिए जंगल में भाग जाएँ, तो यह हमारी भूल है। भगवान कहते हैं, यहीं रहकर अपनी तैयारी करो। विषय तो सब जगह आकर घेरेंगे ही।

मार्दवं – मृदुता, कोमलता। कठोरता के विपरीत भाव।

ह्रीः – लज्जा। कुछ बातों को करने में लज्जा होनी चाहिए। लज्जा के अभाव में मनुष्य स्वैर आचरण करने वाला हो जाता है। अनुशासन में बाँधे रखने के लिए लज्जा का गुण अत्यन्त आवश्यक है।

अचापलम् – चपलता का अभाव। पाँव हिलाते रहना, बहुत बोलना आदि इन्द्रियों का वृथा श्रम है। चपलता और चपलता के आधिक्य से मन भी वश में नहीं रहता।

तेज – चेहरे पर सौंदर्य की रौनक हो न हो, पर भीतर का तेज रहे। अन्याय का प्रतीकार करने की क्षमता हो, दुस्साहसी न हों, मुँहफट भी न हों, पर अन्याय को चुपचाप सहें भी नहीं। अन्याय करनेवाला चाहे जितना भी बलवान हो, अन्याय के सामने नतमस्तक न होना, यह कहलाता है तेज।

क्षमा – स्वयं बलवान हो, अपराधी को हर तरह से दण्डित करने में सक्षम हो, तब भी दण्ड नहीं देता, यह होती है क्षमा। अक्रोध और क्षमा की स्थितियों में थोड़ा सा ही अन्तर है। अक्रोध में अपराधी को दण्डित करने की वृत्ति

ही नहीं उठती। अपने ज्ञान की अग्नि में क्रोध को जलाकर अपराधी को सहानुभूतिपूर्वक समझा दिया जाता है, जबकि क्षमा में अपराधी को दण्डित करने की वृत्ति तो उठी, पर उसे दबा दिया गया।

धृति – धैर्य, धीरज। जीवन में पग-पग पर इसकी आवश्यकता होती है। धीरज ही जीवन भर का हमारा मित्र है। मनुष्य का धीरज यदि छूट जाए, तो वह छोटी से छोटी विपत्ति के भी नीचे दब जाए। पहाड़ जैसी विपत्ति को भी लाँघ जाना धीरज का ही काम है।

शौच – पवित्रता। एक तो होती है बाहर की पवित्रता और एक होती है भीतर की पवित्रता। अर्थात् मन के विचारों को सुन्दर और स्वच्छ रखना।

अद्रोह – द्रोह का अभाव, वैर का अभाव।

नातिमानिता – नम्रता, अहंकार का अभाव।

भगवान कहते हैं – हे भारत ! अच्छे कुल में जो उत्पन्न हुआ है, उसके लिए ये दैवी सम्पत्तियाँ हैं। इनका सेनापति अभय मुख्य द्वार पर है और नातिमानिता पीछे से होने वाले आक्रमण को रोकने के लिए तैनात है। ये सारे गुण तो उसके जीवन में हैं। पर इन गुणों का वह अहंकारी नहीं बनता। यदि वह गुणों का अहंकारी बन जाए, तो उसी द्वार से क्षय करने वाले तत्त्व मनुष्य के जीवन में पैठने लगते हैं।

यहाँ तक तो दैवी सम्पत्तियों का वर्णन हुआ। अब इसके बाद से अन्त तक आसुरी सम्पत्तियों के बारे में विस्तार से भगवान बताते हैं। इन्हें दैवी और आसुरी सम्पत्ति क्यों कहते हैं और इनका जीवन पर क्या प्रभाव पड़ता है, यह समझाने के लिए ही भगवान ने यहाँ इतनी विशद चर्चा की है। **(क्रमशः)**

पृष्ठ ५१२ का शेष भाग

है, अपितु उन्हें बहुत कुछ अच्छे संस्कार के रूप में अपनाने की आवश्यकता है। जैसे अगर एक बालक मैट्रिक परीक्षा पास करता है, तो उसे अच्छे संस्कार के रूप में अपनी साफ-सफाई, अपने घर, आस-पड़ोस, कक्षा तथा अपने परिवेश की सफाई के साथ-साथ आत्मरक्षा के संस्कार में भी उत्तीर्ण होना पड़ेगा, समाज और देशसेवा के संस्कार में भी पास होना पड़ेगा, अपने घर में आवश्यकतानुसार अल्पाहार आदि बनाने का संस्कार उसे सीखना होगा। उच्च शिक्षा की डिग्री तथा तकनीकी डिग्री धारकों को अतिथिसेवा, विवाह आदि सामाजिक उत्सवों पर आगत मेहमानों की सेवा हेतु उन्हें संस्कारी बनना होगा। भारत के शाश्वत शक्तिबोध और सौन्दर्यबोध जैसे संस्कारों को सीखने की आवश्यकता है। इस प्रकार संस्कार और संस्कृति की शिक्षा ही भारत को विकासशील से विकसित बना सकती है। इसीलिए सच ही कहा गया है कि 'कुछ बात है कि हस्ती मिटती नहीं हमारी'। यदि संस्कार और संस्कृति की व्यावहारिकता की बात करें, तो निश्चित रूप से भारत के समस्त बालक, युवा, पुरुष-स्त्री और वृद्ध को भारतीयता को समझना होगा, जो बहुआयामी संस्कार और संस्कृति पर अवलम्बित है। आज भारतवर्ष अच्छे संस्कार और अच्छी संस्कृति के कारण ही विश्व का आध्यात्मिक गुरु और योगगुरु बना हुआ है। आज इन्हीं अच्छाइयों के कारण भारत जी-२० का नेतृत्व कर रहा है। ○○○

पृष्ठ ५१३ का शेष भाग

एक बार पेरिस से बिना पते की चिट्ठी उनके घर तक पहुँच गयी थी, जिस पर मात्र 'तीजन बाई, इंडिया' लिखा था। अपने नाना के एकतारा में उन्होंने दो और तार जोड़कर उसे तंबूरा बनाया। उसके ऊपर लगे मोर के पंख को वे कृष्ण की बाँसुरी मानती थीं, तारों को माँ सरस्वती और नीचे के गोल हिस्से को हनुमान जी की गदा मानती थीं। उसे बजाने के लिए साइकिल के स्पोक को मोड़कर उसी का प्रयोग करती थीं।

बच्चो ! तीजन बाई को उनके उत्कृष्ट योगदान के लिए कई प्रतिष्ठित पुरस्कार मिले। १९८८ में उन्हें पद्मश्री, २००३ में पद्मभूषण और २०१९ में उन्हें पद्मविभूषण से सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त उन्हें संगीत नाटक अकादमी पुरस्कार और नृत्य शिरोमणि जैसे कई सम्मान भी मिले। बिलासपुर (छ.ग.) के केन्द्रीय विश्वविद्यालय ने उन्हें डी.लिट. की उपाधि देकर सम्मानित किया। डॉ. तीजन बाई का ५ जुलाई, २०२६ को स्वर्गवास हो गया। वे सही मायने में छत्तीसगढ़ की धरोहर हैं। उनके जीवन से हमें लगन, परिश्रम और दृढ़ निश्चयता की शिक्षा मिलती है। ○○○

साधुओं के पावन प्रसंग (९४)

स्वामी अशोकानन्द

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु हिन्दी अनुवाद स्वामी पद्माक्षानन्द ने किया है, जिसे धारावाहिक रूप से प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

स्वामी विवेकानन्द कहा करते थे, ''यदि इस संसार में जन्म लिया है, तो अपनी छाप छोड़ जाओ।'' स्वामी अशोकानन्द रामकृष्ण संघ के ऐसे एक विख्यात संन्यासी थे, जिन्होंने संघ के इतिहास में गहरी छाप छोड़ रखी है। वर्तमान समय के बहुत कम साधु उनके जैसे संन्यासियों के अवदान के विषय में जानते हैं। हम सिस्टर गार्गी (मेरी लूईस बर्क) के बहुत आभारी हैं, जिन्होंने स्वामी अशोकानन्द जी महाराज के ऊपर तीन पुस्तकें : A Heart Poured Out, A Disciple's Journal and Shafts of Light प्रकाशित की। A Heart Poured Out पुस्तक में अशोकानन्दजी के जीवन तथा संघर्ष के विषय में विशद विवेचना के साथ-साथ १९३१ से १९६९ तक के वेदान्त सोसाएटी ऑफ नार्दर्न कैलिफोर्निया के इतिहास का भी वर्णन है।



स्वामी अशोकानन्द जी महाराज

स्वामी अशोकानन्द जी महाराज के पूर्व आश्रम का नाम योगेश चन्द्र दत्त था। उनका जन्म १८९३ ई. में बंगलादेश के सिलहट जिले के हबीबगंज के दुर्गापुर ग्राम में हुआ था। वे बचपन से ही बहुत गम्भीर एवं अध्ययनशील थे। जब वे केवल बारह वर्ष के थे, तभी उनके पिताजी की मृत्यु हो गई थी। शोक से निकलने के लिए उन्होंने कालीप्रसन्न सिन्हा द्वारा बंगला में अनुवादित सम्पूर्ण महाभारत का अध्ययन किया। वे स्थानीय विद्यालय में पढ़ाई-लिखाई किया करते एवं इसके साथ ही एक पड़ोसी के निजी पुस्तकालय से पुस्तकें लाकर उनका अध्ययन भी करते थे। अश्विनी कुमार दत्त की पुस्तक भक्तियोग ने उनको बहुत प्रेरित किया। तत्पश्चात् योगेश ने हबीबगंज सरकारी हाई स्कूल में दाखिला लिया। उस समय उन्होंने भारतीय इतिहास तथा अंग्रेजी साहित्य के साथ-साथ डिकेंस, विलियम मेकपीस थैकरे, स्कॉट इत्यादि की भी पुस्तकों का अध्ययन किया। रवीन्द्रनाथ टैगोर की पुस्तकों का भी उन्होंने पठन-पाठन किया। उनकी मेधा तथा स्मरणशक्ति आश्चर्यजनक थी।

स्वामी अशोकानन्द बाद में इन्द्रदयाल भट्टाचार्य (परवर्ती काल में स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज) के सम्पर्क में आए। प्रेमेशानन्दजी महाराज रामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा को सिलहट में युवकों के बीच में प्रचारित करने का माध्यम हुए थे। स्वामी विवेकानन्द से सम्बन्धित पुस्तकों को पढ़कर वे बहुत प्रभावित हुए। १९१२ ई. में वे अपने एक शिक्षक के साथ बेलूड़ मठ गये और वहाँ पर स्वामी ब्रह्मानन्द, स्वामी शिवानन्द, स्वामी प्रेमानन्द तथा स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज का दर्शन किया। कोलकाता के एक सप्ताह प्रवास के दौरान अशोकानन्द जी ने उद्बोधन में स्वामी सारदानन्द जी महाराज का भी दर्शन किया। तदनन्तर वे श्रीरामकृष्णवचनामृत तथा स्वामी विवेकानन्द का ज्ञानयोग का अध्ययन करने लगे। दैववाणी में स्वामी विवेकानन्द का यह कथन कि 'Don't seek God, but see him' अर्थात् 'ईश्वर को खोजो मत, उनका दर्शन करो' ने युवक योगेश के लिए एक नया मार्ग खोल दिया।

अशोकानन्दजी को मैट्रिकूलेशन में बहुत अच्छे अंक प्राप्त हुए। अच्छे परिणाम के साथ-साथ उन्होंने छात्रवृत्ति तथा रजत पदक भी प्राप्त किया। तत्पश्चात् उन्होंने मुरारीचन्द कॉलेज, सिलहट से बारहवीं की पढ़ाई की। इन दो वर्षों के भीतर उन्होंने विभिन्न दर्शनशास्त्र, संस्कृत तथा अंग्रेजी साहित्य तथा स्वामी विवेकानन्द की विशद जीवनी (चार

खण्ड) का गहराई से अध्ययन किया। योगेश बीच-बीच में बेलूड़ मठ में जाने लगे। आने-जाने के क्रम में स्वामी प्रेमानन्द जी महाराज के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। योगेश हबीबगंज में गौरी-माँ से भी मिले। एक बार वे कॉलेज की छुट्टी में कोलकाता गए और श्रीमाँ सारदा देवी का दर्शन किया। मुरारीचन्द कॉलेज से बारहवीं की पढ़ाई कला विभाग में पूर्ण करने के पश्चात् वे सिटी कॉलेज, कोलकाता में स्नातक का अध्ययन करने गये। कोलकाता में निवास के दौरान उनको महेन्द्रनाथ गुप्त 'श्रीम' तथा श्रीरामकृष्ण के अन्य शिष्यों से मिलने का अवसर मिला। उन्होंने अंग्रेजी साहित्य में स्नातक की डिग्री स्वर्ण पदक के साथ पास किया।

स्वामी अशोकानन्द जी को स्नातक पास करने के बाद पाँच खण्ड, बियानी बाजार हाई स्कूल, सिलहट में सहायक हेडमास्टर का पद प्राप्त हुआ। वे विद्यालय में संस्कृत, इतिहास तथा अंग्रेजी पढ़ाते थे। उनके छात्रों में से परवर्ती काल में स्वामी विमुक्तानन्द, स्वामी साधनानन्द तथा स्वामी शान्तस्वरूपानन्द और ब्रह्मचारी अक्षयचैतन्य हुए। आदर्शवादी शिक्षक योगेश छात्रों के बीच बहुत लोकप्रिय थे। इसके कुछ ही दिनों बाद वे पाँचखण्ड छोड़कर हबीबगंज के अन्तर्गत शष्ठीगंज में शिक्षक हुए। उन दिनों हबीबगंज के खोयाई नदी की उत्तर दिशा में गोसाईनगर नामक एक गाँव था। स्वामी विवेकानन्द से प्रेरित होकर उन्होंने वहाँ के अस्पृश्य बालक-बालिकाओं को पढ़ाना-लिखाना आरम्भ किया।

युवक योगेश मन-ही-मन रामकृष्ण संघ में सम्मिलित होने का मन बना रहे थे किन्तु अविवाहित बहन उनके इस मंगल कार्य में बाधक हो रही थी। पिताजी की मृत्यु के उपरान्त उसके विवाह की जिम्मेदारी उनके कन्धों पर ही थी। उस समय प्रथम विश्व युद्ध चल रहा था। ब्रिटिश सरकार के कैण्टोनमेण्ट (छावनी) में उनको लेखपाल की नौकरी मिल गई। उन्होंने वहाँ पर छह महीने तक कार्य किया। बहन के विवाह हेतु पर्याप्त रुपया जमा करके उन्होंने घर भेज दिया। योगेश पूना से सीधे स्वामी ब्रह्मानन्द जी महाराज के पास भुवनेश्वर चले गये तथा वहाँ पर वे रामकृष्ण संघ में सम्मिलित हुए। मई, १९२० ई. में ब्रह्मानन्दजी महाराज ने उनको चेन्नई भेज दिया। वे वहाँ पर पाँच वर्ष तक थे तथा अंग्रेजी मासिक पत्रिका वेदान्त केसरी में सेवा की। चेन्नई में १९२१ ई. में स्वामी ब्रह्मानन्द जी से उनकी ब्रह्मचर्य दीक्षा हुई। उनका नाम हुआ – ब्रह्मचारी प्रज्ञाचैतन्य। संन्यासी होने के पूर्व ही स्वप्न में उन्हें स्वामी विवेकानन्द से मन्त्रदीक्षा प्राप्त हुई थी। १९२३ ई. में बेलूड़ मठ में स्वामी शिवानन्द जी महाराज ने उनको श्रीरामकृष्ण की जन्म-तिथि के दिन संन्यास दीक्षा दी तथा उनको स्वामी अशोकानन्द नाम दिया।

१९२५ ई. में मई माह में वे चेन्नई से बेलूड़ मठ आए। इसी वर्ष अक्तूबर में वे अद्वैत आश्रम, मायावती में प्रबुद्ध-भारत के सह-सम्पादक हुए। उस समय स्वामी विविदिषानन्द जी महाराज प्रबुद्ध-भारत के सम्पादक थे। १९२७ से १९३० ई. तक स्वामी अशोकानन्द ने प्रबुद्ध भारत के सम्पादक के रूप में कार्य किया। प्रबुद्ध भारत के इतिहास में ये चार वर्ष स्वर्ण-काल थे। उस समय अशोकानन्दजी का तेजोमय तथा नवीन विचारों वाला सम्पादकीय प्रकाशित हुआ। महात्मा गाँधी के राजनीतिक, आर्थिक और व्यावसायिक विचारों पर समालोचना करके उन्होंने हलचल मचा दी। स्वामी शिवानन्द जी महाराज से प्राप्त निर्देशों पर उन्होंने रोमाँ रोलाँ के साथ विस्तृत पत्राचार किया, जो श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द का जीवन-चरित्र लिख रहे थे। १९३१ ई. में अद्वैत आश्रम से 'The Influence of Indian Thought on the Thought of the West' नामक एक छोटी पुस्तिका प्रकाशित हुई। इस पुस्तिका में अशोकानन्दजी ने रोमाँ रोलाँ द्वारा लिखित तथ्यों का विश्लेषण किया तथा इसके साथ ही प्राचीन काल से बीसवीं शताब्दी तक वेदान्त शास्त्र के क्रमविकास का विवरण भी प्रकाशित किया।

१९३१ ई. में बेलूड़ मठ से अशोकानन्दजी को सैन फ्रांसिस्को भेजा गया। वे वहाँ पर ४ जुलाई को पहुँचे। स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका में दो केन्द्र स्थापित किया था। एक न्यूयार्क में १८९८ में तथा दूसरा १९०० में सैन फ्रांसिस्को में। स्वामी विवेकानन्द के बाद स्वामी तुरीयानन्द, स्वामी त्रिगुणातीतानन्द, स्वामी प्रकाशानन्द, स्वामी दयानन्द, स्वामी माधवानन्द तथा स्वामी विविदिषानन्द ने सैन फ्रांसिस्को केन्द्र का कार्यभार ग्रहण किया था। सैन फ्रांसिस्को की जलवायु विविदिषानन्द महाराज के स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं थी। इसीलिए वे कोलोराडो चले गए। स्वामी अशोकानन्द ने नवीन उत्साह के साथ सैन फ्रांसिस्को में कार्य आरम्भ किया। उस समय अमेरिका में महान आर्थिक संकट चल रहा था। साधारण मानव को कार्य नहीं, रहने-खाने का कष्ट तथा जीवन-यापन के लिए आवश्यक वस्तुओं का भी बहुत अभाव था। इन संकटमय परिस्थिति में भी कुछ मुट्ठीभर भक्तों को

लेकर अशोकानन्दजी ने कार्य किया।

स्वामी अशोकानन्द जी महाराज ने अपने व्यक्तित्व तथा असाधारण मेधा से उत्तर कैलिफोर्निया में वेदान्त का बीजारोपण किया। इसी दौरान २० फरवरी, १९३४ ई. में स्वामी शिवानन्द जी महाराज महासमाधि में लीन हो गये। इस दु:खद संवाद ने अशोकानन्दजी को बहुत प्रभावित किया था। इसी वर्ष नवम्बर में वे सात महीने के लिए भारत आये। यही उनका प्रथम और अन्तिम भारत-आगमन था। उस समय स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज ने अशोकानन्द महाराज को श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा तथा स्वामी विवेकानन्द की पवित्र-अस्थि सैन फ्रांसिस्को केन्द्र हेतु दिया।

अमेरिका वापस आने के बाद अशोकानन्द जी ने पुन: नए उत्साह के साथ व्याख्यान देना आरम्भ किया। उनका व्याख्यान इतना लोकप्रिय हुआ कि सैन फ्रांसिस्को केन्द्र के पुराने मन्दिर का सभागार भी श्रोताओं के लिए कम पड़ जाता था। इसके बाद ही अशोकानन्दजी ने Century Club में रविवारीय व्याख्यान देना आरम्भ किया, जहाँ पर इससे बड़ा सभागार था। हालाँकि महाराज की अंग्रेजी अति उत्तम थी, तथापि कभी-कभी उनका स्वर तथा उच्चारण उतना अच्छा नहीं होता था। वे अपने नजदीकी भक्तों से अपनी त्रुटियों को बताने के लिए कहते। अन्तत: उन्होंने इसको संशोधित करने के लिए कुछ Voice lessons (स्वर प्रशिक्षण) लिया। उनका व्याख्यान इतना आकर्षक तथा प्रभावशाली होता था कि श्रोतागण डेढ़ घण्टा से दो घण्टा तक मन्त्रमुग्ध होकर सुनते रहते।

१९३० ई. के उतरार्ध में अशोकानन्दजी ने लेक टैहाऊ में २०० एकड़ जमीन ग्रीष्मकालीन शिविर हेतु खरीदा। १९३८ ई. में लेक टैहाऊ आश्रम का उद्घाटन हुआ। इसी बीच अशोकानन्दजी ने बर्कले विश्वविद्यालय के किसिनिटी में रविवार को सन्ध्या समय व्याख्यान देना आरम्भ किया। श्रेयांसि बहु विघ्नानि, कहा जाता है कि बिना विघ्न-बाधा के कोई भी महान कार्य सम्पन्न नहीं होता। बर्कले में वर्णभेद के कारण, आरम्भिक समय में अशोकानन्दजी भवन खरीदने में सफल नहीं हुए। बाद में, अपने घनिष्ठ अमेरिकी भक्तों की सहायता से विश्वविद्यालय के बगल में ही वे मकान खरीदने में सफल हुए। बहुत से विघ्न-बाधाओं को पार करते हुए २२ अक्तूबर, १९३८ को बर्कले में मन्दिर का उद्घाटन हुआ।

स्वामी अशोकानन्द जी ने उत्तर कैलिफोर्निया में कुछ नए केन्द्र आरम्भ किए। इसके साथ ही दो कॉन्वेन्ट प्रारम्भ किया, एक सैन फ्रांसिस्को तथा दूसरा सैन राफैल, कैलिफोर्निया में। इसके साथ ही, बहुत से युवक सैन फ्रांसिस्को आश्रम में सम्मिलित हुए।

१९०० ई. में स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज ने १६० एकड़ में शान्ति आश्रम आरम्भ किया था। तत्पश्चात् स्वामी त्रिगुणातीतानन्द जी महाराज ने उसका विस्तार किया। किन्तु जलाभाव के कारण शान्ति आश्रम निवास हेतु उपयुक्त नहीं हुआ। अशोकानन्दजी ने शहर के निकट रिट्रीट के लिए जमीन खोजना आरम्भ किया। ओलेमा, कैलीफोर्निया में २००० एकड़ जमीन १६६,२५० डॉलर में खरीदा। ओलेमा मेरीन कॉन्टी में है, जो सैन फ्रांसिस्को से एक घण्टे



ओलेमा वेदान्त रिट्रीट, कैलिफोर्निया, अमेरिका

की दूरी पर है। १९४६ ई. में इसका उद्घाटन हुआ, अब यह ओलेमा वेदान्त रिट्रीट के नाम से प्रसिद्ध है। संन्यासी, संन्यासिनी तथा भक्त इस विस्तृत रिट्रीट सम्पत्ति की रक्षा करते हैं।

स्वामी अशोकानन्द श्रीरामकृष्ण तथा स्वामी विवेकानन्द की वाणी का अद्वैत वेदान्त के माध्यम से प्रचार करते थे। अमेरिकियों के भीतर वे अद्वैत वेदान्त की भावना प्रविष्ट कराने का प्रयास करते। उनका अधिकांश व्याख्यान अद्वैत वेदान्त के ऊपर था। उन्होंने सैन फ्रांसिस्को से वायस ऑफ इण्डिया नामक पत्रिका दो वर्ष (१९४५-४६) तक प्रकाशित किया। विभिन्न कारणों से यह पत्रिका प्रकाशित नहीं हो सकी। उनकी प्रेरणा तथा उत्साह से सिस्टर गार्गी ने 'स्वामी विवेकानन्द इन द वेस्ट : न्यू डिस्कवरी' नामक पुस्तक छह भागों में प्रकाशित किया। **(क्रमश:)**



२९ जून, २०२६ को परम पूज्य प्रेसीडेन्ट महाराज ने **काँकुड़गाछी, कोलकाता** में पुनर्निर्मित गर्भगृह का उद्घाटन किया।

४ जुलाई, २०२६ को **विवेकानन्द विश्वविद्यालय, हावड़ा** में दीक्षान्त महोत्सव का आयोजन किया गया, जिसमें ४४३ शिक्षार्थियों को डिग्री और डिप्लोमा से सम्मानित किया गया। परम पूज्य प्रेसीडेन्ट महाराज स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने छात्रों को सम्बोधित किया। रामकृष्ण मठ और मिशन के महासचिव और विश्वविद्यालय के कुलाधिपति श्रीमत् स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज का वीडियो सन्देश भी प्रसारित किया गया।

८ जुलाई, २०२६ को पूज्य स्वामी गिरीशानन्द जी महाराज ने **दार्जिलिंग में** स्वागत-द्वार का उद्घाटन किया।

१६ जुलाई, २०२६ पावन रथयात्रा के दिन पूज्य प्रेसीडेन्ट महाराज ने **रामकृष्ण मठ, दक्षिणेश्वर** में नव निर्मित श्रीरामकृष्ण मन्दिर का लोकार्पण किया। इस समारोह में लगभग ४१५ साधु और हजारों भक्त सम्मिलित हुये।



रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द, रायपुर के द्वारा व्यक्तित्व विकास शिविर का आयोजन किया गया

१३ जुलाई, २०२६ को १०.३० से ११.३० बजे तक रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के द्वारा व्यक्तित्व विकास प्रकल्प के अन्तर्गत खैरागढ़ छूईखदान गंडई जिले के साल्हेवारा ग्राम के स्वामी आत्मानन्द शासकीय उत्कृष्ट अँग्रेजी माध्यम विद्यालय में व्यक्तित्व विकास शिविर का आयोजन किया गया। इसकी अध्यक्षता विद्यालय की प्राचार्या श्रीमती सुजाता यादव ने की। एसोसिएट प्रोफेसर डा. विनीत साहू और स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने बच्चों को सम्बोधित किया।





इसी दिन ३.३० से ४.३० बजे तक स्वामी आत्मानन्द शासकीय उत्कृष्ट हिन्दी माध्यम विद्यालय में भी व्यक्तित्व विकास शिविर का आयोजन आश्रम के द्वारा किया गया। अध्यक्षता प्राचार्य जगदीश राम पंचकपाट ने की और वक्ता थे डॉ. विनीत साहू और स्वामी प्रपत्त्यानन्द।

१७ जुलाई, २०२६ को गरियाबन्द जिले के मैनपुर ब्लाक के शोभा ग्राम के शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में व्यक्तित्व विकास शिविर का आयोजन किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता की, शासकीय सुरेन्द्र साय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गरियाबन्द के प्रोफेसर श्री सत्यम कुम्भकार जी ने। डॉ. विनीत साहू, स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने बच्चों को सम्बोधित किया। इन कार्यक्रमों में कुल ८१३ लोग उपस्थित थे।

विवेकानन्द विद्यापीठ, रायपुर में तुलसी-जयन्ती मनाई गयी

१९ जुलाई, २०२६ को विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में तुलसी-जयन्ती-समारोह आयोजित हुआ। अतिथियों के द्वारा तुलसीदास के चित्र पर पुष्पार्पण, दीप प्रज्वलन के बाद विद्यापीठ के छात्रों ने वेदपाठ किया और 'सीतापति रामचन्द्र' भजन प्रस्तुत किया। अतिथियों के स्वागत और परिचय के बाद विभिन्न विषयों पर वक्ताओं के व्याख्यान हुए। डा. कल्पना मिश्रा ने तुलसी का काव्य सौन्दर्य, डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने ने तुलसी की भावदृष्टि और स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने तुलसी की रामभक्ति पर व्याख्यान दिया। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता रामकृष्ण मठ और मिशन के न्यासी पूज्यपाद स्वामी सर्वभूतानन्द जी महाराज ने की। धन्यवाद ज्ञापन एच.डी. प्रसाद जी ने तथा संचालन श्रीमती मनीषा चन्द्राकर ने किया।